तथा अन्य कहानियाँ

मन मोहन सरल

प्रकाशक :

पारिजात प्रकाशन

मवाना (मेरठ)

ाशक :
ोष पाल दुबलिश,
रिजात प्रकाशन
ाना (मेरठ)

□

म आवृत्ति: १९५९
ा तीन रुपये पच्चीस नये पैसे

□

कार :
न्द्र कुमार लल्लर

□

ं :
ल प्रिंटिंग प्रेस
ना (मेरठ)

लेखकीय

सोलह कहानियां लेकर 'प्यास एक : रूप दो' समुपस्थित है।

यह प्रश्न तो विवादास्पद है कि क्या वस्तुतः : आज की कहानी को किसी भूमिका की अपेक्षा है अथवा कहानी और पाठक के बीच किसी व्याख्याकार की आवश्यकता है ? किन्तु अपनी इन कहानियों को पुस्तक रूप में प्रस्तुत करते समय मेरे निकट कुछ अन्य प्रश्न भी उपस्थित हुए जो मेरे लेखन और इन कहानियों से सम्बद्ध थे।

मैं कहानी क्यों लिखता हूं, इसके यथासम्भव उत्तरों पर मैंने विचार किया। स्वातःसुखाय अथवा मन के भावोद्रेक को बाहर निकालने का माध्यम स्वीकार करना तो बहुत पुराना बहाना है और व्यावहारिक दृष्टि से मुझे इसमें कोई सार दृष्टिगोचर नहीं होता। जहां तक धन और यश का सम्बन्ध है, इस पेशे में इन दोनों पक्षों में भी घाटा ही है। धनार्थ लेखन तो सम्भव ही नहीं, रहा यश, तो कहानी-कार मात्र होने से समाज में कोई सम्मान नहीं दिया जाता। साधारण पाठक कहानी पढ़ने को थोड़ा बहुत महत्त्व दे सकता है किन्तु कहानीकार में रुचि नहीं दिखाता। यश का दूसरा क्षेत्र हो सकता है, साहित्यकार तथा आलोचकों का संसार। लेकिन दलबन्दी के इस युग में मान्यता प्राप्त करने के लिए ही इतना संघर्ष है कि छोटे-मोटे के लिए यशोपार्जन का लक्ष्य छू पाने का सहज प्रश्न ही नहीं उठता। समाज सुधार के लिए कहानी लिखना मैं महज एक आदर्शवादी विचार मानता हूं, जिसका आशय दूसरों को भ्रम में डालना ही है।

मैं कहानी को मनुष्य के लिए भोजन और वस्त्र की तरह

आवश्यक मानता हूं। कहानी की आवश्यकता आज की नहीं वरन् चिरन्तन है। हमारे देश की सर्वप्रथम कहानी लगभग साढ़े तीन हजार वर्ष पूर्व लिखी गयी थी—ऋग्वेद में संकलित पुरुरवा और उर्वशी का उपाख्यान। इसके बाद जातक कथाएं, पंचतंत्र, बैताल पचीसी और फिर सरस्वती (जून १६००) में प्रकाशित 'इन्दुमती' के सोपानों पर चढ़कर जबकि कहानी आज की स्थिति पर पहुंची है तब भी उसकी आवश्यकता कम नहीं हुई है अपितु किन्हीं क्षेत्रों में बढ़ ही गयी है।

कहानी सुनने–पढ़ने की मानव की इस सनातन उत्कण्ठा और आज के बौद्धिक, तार्किक, मानसिक तथा सामाजिक क्षेत्रों में उसकी उपयोगिता बढ़ जाने के हेतु मैं कहानी लेखन आवश्यक मानता हूं।

लेकिन जिन आरंभिक कहानियों को बीज भाव और प्रेरणा मानकर आज के कथाकार को कहानी लिखनी है उनके शिल्प तथा वस्तु में बड़ा अन्तर है। आज की उपलब्धियां पिछली सभी मान्यताओं को तोड़ चुकी हैं। पुरानी लीक, पुराने भाव, पुराने विचार, पुरानी कल्पनाएं आज के लिए रुढ़िमात्र ही रह गयी हैं। आज की कहानी चमत्कार की पक्षपाती नहीं। आज शिल्पी और साथ ही पाठक भी अभौतिक अथवा अतिभौतिक, अप्राकृत अथवा अतिप्राकृत अमानुषिक अथवा अतिमानुषिक सत्ताओं में आस्था न रखता है और न रख सकता है। आज के कहानीकार के पास न 'अलादीन का चिराग' है और न हनुमान की 'काम रूप सिद्धि'। पाठक की रुचि का स्तर भी अब इन कल्पनाओं में रस नहीं लेना चाहता। घटनाक्रम और संयोगों को आधार मानकर चलना बहुत पुराना नहीं तो नया भी नहीं रह गया है। अद्यतन शिल्प में इनका उपयोग भी नहीं किया जाता। उसमें न कथानक ही अनिवार्य है और न पात्रों के चित्रण की व्यापक प्रणाली। आज कहानीकार की सीमाएं सिमट गयी हैं लेकिन उसकी परिधि, उसके साधन, उसके सूत्र, उसके क्षेत्र बहुत अधिक व्यापक हो गये हैं। लेकिन इसका प्रतिफल यह हुआ कि आज के लेखक को पहले से अधिक सतर्क और

दक्ष रहन की आवश्यकता है ; आज अधर आकाश मे बध अकेले तार पर सरकस के नट की तरह संतुलन स्थिर रखते हुए चलना है ।

अब कहानी के परिपार्श्व पर बल दिया जाता है लेकिन फार्मेल्टीज' पर नहीं । चरमलक्ष्य रह गया है, प्रभावान्विति । बस, पाठक के चिन्तन और सम्वेदन दोनों को झंझोड़ना, उसमें आतंक या हिलोड़न पैदा करना मात्र ही उद्देश्य रह गया है. और यही आज की कहानी का 'चमत्कार' है । गुम्फित कुण्ठाओं के प्रकाश में ही जीवनपरक प्रतिमान स्थिर किये जाते हैं । मन की आन्तरिक वृत्तियों के आधार पर व्यक्ति का विश्लेषण किया जाता है । इस तरह आज कहानी की सृजन-प्रक्रिया समाज से हटकर व्यक्ति पर केन्द्रित है ।

व्यक्तिगत होने के कारण क्या आज की कहानी की व्याख्या की आवश्यकता है जिससे सामान्य पाठक भी उसमें रस ले सके ? इस प्रश्न के उत्तर के लिए मुझे आज की कहानियों के दो वर्ग करने पड़ेंगे । एक का लेखक अपने को समाज के स्तर से अधिक ऊंचा मानकर अपने बौद्धिक चिंतन-सम्वेदन से जिस वैशिष्ट्य की सृष्टि करता है उसके लिए आज के पाठक की बौद्धिक चेतना और अर्थबोध की सामर्थ्य, उसके अनुसार सतही और अपर्याप्त ठहरती है । स्पष्टतः ऐसी 'विशिष्ट' कहानी व्याख्या सापेक्ष है ।

किन्तु एक वर्ग वह भी है जो धरातल पर ही रहता है । समाज के 'सामान्य' में रमता है । समाज की साधारण सी अनुभूति और उसकी अनुभूति दोनों का स्तर एक ही रहता है । बस, वह उस अनुभूति की उचित अभिव्यक्ति मात्र कर देता है । यह अभिव्यक्ति भाषा और शिल्प की दृष्टि से भले ही किंचित दुरूह हो जाये फिर भी समाज के सामान्य की अनुभूति की प्रतिकृति होने के कारण किसी व्याख्या की आश्रित नहीं रह जाती । यह अनुभूति भी होती तो व्यक्तिगत ही है लेकिन चिरंतन और शाश्वत होने के कारण समाजगत हो जाती है । तात्पर्य यह कि इस वर्ग का लेखक व्यक्तिवादी होते हुए भी सामान्य का

पक्षपाती है, वैशिष्ट्य का नहीं।

नवीनता के व्यामोह में पड़कर आज के कहानीकार ने शिल्प और वस्तु में जिन प्रयोगों को अपनाया है वह बहुत अंशों में प्रयोगमात्र ही रह गया है। उससे न तो कथा के कलापक्ष में और न भावपक्ष में ही कोई अभिवृद्धि हुई है और न कहानी के उज्ज्वलतर भविष्य के लिए ही कोई हितकर पृष्ठभूमि तैयार हुई है, ऐसा मेरा विचार है। प्रयोग आज के युग की आवश्यकता है और प्रगति के लिए अपेक्षणीय है किन्तु साहित्य को उद्देश्यहीन बनाकर, अभिव्यक्ति के माध्यमों को दुरूहतम रूप देकर, शिल्प और तकनीक की आड़ में कहानी के नये कहे जाने वाले परिवेश में विशृंखलता और असंबद्धता की सृष्टि करके जो प्रस्तुत किया जा रहा है वह प्रयोग की परिभाषा में नहीं आना चाहिये।

इस तरह 'प्यास एक : रूप दो' की कहानियों की वकालत करना मैं आवश्यक नहीं समझता। ये कहानियां न केवल बौद्धिक अभिव्यक्ति हैं और न केवल स्वानुभूतिपरक वैशिष्ट्य ही। यह 'सामान्य' की है और समष्टि के लिए हैं। समष्टि के सभी सामान्यों को यह संकलन समर्पित है।

यों यह मेरा प्रथम कहानी—संग्रह है लेकिन इसकी प्रायः सभी कहानियां इधर के तीन–चार वर्षों की सृष्टि हैं। 'सड़क पर एक शाम' रिपोर्ताज है किन्तु रिपोर्ताज को अलग संज्ञा प्राप्त होने पर भी उसे कहानी की विधा से अलग नहीं किया जा सकता। 'मोल भाव' अध्यांतरिक दृष्टिकोण से लिखी गयी है और इसी दृष्टिकोण का दूसरा पक्ष 'अस्थिपंजर की आत्मा' में है। 'प्रणय निरोध' आगे आने वाले युग की कल्पना है इसलिए प्रकट में उसमें अतिभौतिक सत्ताएं दृष्टिगत होगी लेकिन तर्क और विज्ञान की विचारभूमि पर वे निराधार नहीं ठहरेंगी।

यह सभी कहानियाँ विभिन्न पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित हो चुकी है, तथा कतिपय कहानियों के मराठी, गुजराती, उर्दू आदि भाषाओं में अनुवाद भी प्रकाशित हुए हैं। 'ज्ञानोदय', 'सरिता'

तथा धर्मयुग' के सम्पादकों और संचालकों का मैं विशेष रूप से आभारी हूं जिन्होंने अपने यहां प्रकाशित कहानियां संग्रह में सम्मिलित करने की अनुमति दी। कतिपय कहानियां आकाशवाणी के विभिन्न केन्द्रों से प्रसारित भी हो चुकी हैं, अतएव उनके निर्देशकों का भी आभार स्वीकार करता हूं।

'पारिजात प्रकाशन' के श्री संतोषपाल तथा चित्रकार 'लल्ला' जी के प्रति आभार प्रकाशन का प्रश्न ही नहीं उठता नहीं तो उन्हें मनाने का श्रम करना पड़ेगा।

१३—राजपूत क्वार्टर्स,
मेरठ
वसंत पंचमी, सं० २०१५ वि०
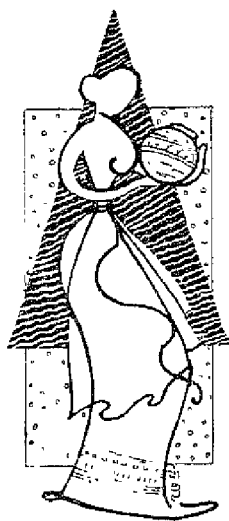
रेगिस्तान

रोगियों के सो जाने पर उन्हें चादर उढ़ाते हुए सोमा रोज की तरह कुछ अधिक देर तक बेड नम्बर आठ पर रुकी। रोगी का नाम नरेश था। वह उसके वार्ड का सबसे कम उमर का रोगी था और उसकी स्थिति सबसे अधिक चिंताजनक थी। नरेश सरकार के किसी विभाग में अफसर रहा था। अब पांच महीने से इलाज के लिए यहां था। वह अभी क्षय की पहली स्टेज पर ही था, लेकिन इधर चार पांच दिनों से उस की हालत कुछ अधिक खराब थी।

चादर उढ़ाते समय सोमा को छाती पर रखे उस के हाथों में दबी एक डायरी दिखाई दी। उसने एक बार सारे वार्ड में इधर उधर नज़र दौड़ाई, फिर झुक कर आहिस्ता से उसके हाथों से डायरी निकाल ली

और कुतूहल से उसे खोलने लगी। पहले ही पृष्ठ पर लिखा था, 'निजी डायरी'। सोमा ने उसे सहसा बन्द कर दिया और वह उसे वहीं रखने को हुई किन्तु कुछ सोचकर ठहर गयी–बगल में दबा कर नरेश को चादर उढ़ाती हुई आगे बढ़ गई।

नरेश की निजी डायरी में क्या हो सकता है, यह जानने की उसे उत्सुकता थी। उसने मरीजों का चार्ट जल्दी जल्दी देखा और हस्ताक्षर करके जाने को मुड़ी ही थी कि डाक्टर ने रोक कर कहा, "सिस्टर, रात में नम्बर आठ की देख भाल रखना। हालत खतरनाक है। जरूरत हो तो मुझे बुला लेना।"

सोमा ने गरदन हिला दी और अपने कमरे की ओर चल दी। डायरी पढ़ने की जल्दी में उसने यह भी ध्यान नहीं दिया कि डाक्टर उसी नरेश के बारे में ही तो कह रहा था।

कमरे में पहुँच कर उसने किवाड़ बन्द कर लिये और अधीरता से डायरी का पहला पन्ना खोला। पृष्ठ के ऊपरी भाग में बायीं ओर लिखा था, 'निजी डायरी'। नीचे के भाग में दाहिनी ओर नरेश के सुन्दर हस्ताक्षर थे। 'निजी' शब्द से कुछ देर के लिए उसकी अंगुलियों पर शिष्टाचार और सभ्यता आ विराजे। लेकिन दूसरे ही क्षण नरेश के नाम के कारण हुई उत्सुकता प्रबल हो उठी और सोमा ने पृष्ठ पलट दिया।

डायरी के शुरू के पृष्ठों में उसे कोई विशेष बात नहीं मिली। उनमें नरेश का पारिवारिक परिचय था, स्कूल कालिज की साधारण सी घटनाएं थीं। यह सब डायरी के रूप में नहीं, आत्मकथा के रूप में था। जान पड़ता था कि यह डायरी लिखने का निश्चय करने के बाद उसे पूरा करने के लिए कुछ स्मरण–शक्ति के बल पर, कुछ जानकारी के आधार पर लिखा गया है। डायरी का दूसरा भाग डायरी के रूप में ही था। इसे पढ़ना आरम्भ करने से पहले सोमा तनिक ठहरी। उसने पहले भाग की सामग्री का जायका लिया :

नरेश का जन्म आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न परिवार में हुआ था। उसकी माँ का देहान्त उसके जन्म के साथ ही हो गया था। उसका पालन पोषण आया ने किया था। पिता जी माँ को बहुत अधिक प्यार करते थे। नरेश को बाद में पता चला था कि वे दोनों बचपन से ही एक दूसरे को जानते थे। इसलिए जब पहले ही प्रसव में अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु हो गयी, तो उन्हें बड़ा सदमा पहुंचा। इसके फलस्वरूप उनका स्वभाव चिड़चिड़ा हो गया। नरेश को आया के सुपुर्द करके वह उससे तो प्रायः निश्चिन्त ही हो गये। कचहरी का काम भी उन्होंने बस खर्चा चलाने लायक ही रखा। घर में तो वह नहीं के बराबर ही रहते। उस बीच भी नरेश की ओर उनका ध्यान नहीं जाता। यदि कभी वह सामने आ भी जाता, तो उसे झिड़कियाँ ही मिलतीं। बाद में नरेश ने अनुमान लगाया कि इस उपेक्षापूर्ण व्यवहार का कारण यह था कि वह उसे अपनी प्रिय पत्नी की मृत्यु का कारण समझते थे। अकसर उसे यह सुनने को भी मिलता था।

आया से मुक्ति पाने के बाद उसे स्कूल में दाखिल करा दिया गया और वहाँ के कुछ अच्छे, कुछ बुरे वातावरण में उसके जीवन की नीव तैयार हुई।

फिर कालिज जीवन का प्रारम्भ हुआ। वहां कुछ नया ही वातावरण मिला। नये साथी, नयी आजादी और कुछ नये तरह के बंधन उसने देखे। इस अवधि में ही एक दिन उसने डायरी लिखनी शुरू की।

सोमा ने कुछ सोचते हुए डायरी पर फिर नजर दौड़ाई। जल्दी जल्दी कुछ पृष्ठ उलट पलट कर देखे, फिर कलाई पर बंधी घड़ी की ओर देखा। उसे आधा घन्टा होने को आया था और अभी डायरी सारी पडी थी, उसने फिर पढ़ना शुरू किया। एक जगह लिखा था :

आज मुझसे कई सहपाठियों ने कहा कि मैं आजकल उदास सा रहता हूं। क्यों ? आखिर कारण क्या है ? मैं स्वयं भी नहीं जान पा

रहा हू । लेकिन यह मं भी अनुभव करता हू कि मै पिछले कई महीना से कुछ उदास सा हूं । मन नहीं लगता, लेकिन क्यों ?

कुछ पृष्ठ बाद :

आज कालिज में एक घटना हो गयी । नीलम ने मुझे कल अपने घर आने का निमंत्रण दिया । उसका जन्म दिन है । क्लास के चार लड़कों को बुलाया है । उनमें एक मैं भी हूँ । नीलम क्लास की लडकियो में सबसे आकर्षक है । शुरू से ही मैं उसे देखता रहा हूं । अब कुछ दिनों से वह मेरी ओर झुकी हुई मालूम देती है । अकसर आंखें मिल जाती हैं । उपन्यासों में मैंने उस क्षण का जैसा वर्णन पढ़ा है, ठीक वैसा ही अनुभव उस समय होता है । और आज उसी नीलम ने मुझे अपने घर आने का निमंत्रण दिया है । इसी खुशी में आज इतना ही लिख रहा हूँ ।

पार्टी में कोई विशेष बात नहीं हुई । एकाध बार नीलम से बात करने का अवसर मिला । वह भी थोडी थोड़ी ही देर के लिए । अन्य भी तो बहुत से अतिथि थे । लेकिन आज मै बहुत खुश हूं ।

आज नीलम ने बड़ी अजीब बात कही । ऐसा शायद ही कोई लड़की किसी लड़के से कहती होगी । बात यह हुई कि हमारा एक पीरियड खाली था । मैं लॉन में बैठा हुआ था । सहसा नीलम उधर आई । वह कुछ इस तरह से आई थी कि मुझे लगा जैसे किसी की तलाश मे आई हो । मुझसे थोड़ी दूर पर खडी होकर एकटक मुझे देखने लगी । मैं भी उसकी ओर देखता रहा । लेकिन जब उसने तीन मिनट बाद भी पलक न झपकाई, तो मैं कुछ सहम सा गया और अपनी आंखें झुकाकर हिचकिचाता हुआ बोला, "किसे देख रही हैं ?" मेरा आशय था कि किसे तलाश कर रही हैं ।

वह मेरी ओर आँखें गड़ाये ही बोली, "आप को ही ।"

मैं उसका आशय 'देखने' से ही समझ कर सहसा कुछ न कह सका, फिर शरमाते हुए कहा, "मेरा मतलब था, किसकी तलाश है ?"

अब वह मुसकराई और उसी तरह देखती हुई बोली एक प्रोफसर को देखना था ।"

बात तो मामूली है, लेकिन मुझे लगता है कि इसके गर्भ में कुछ है अवश्य । क्या है, भविष्य बतलाएगा ।......

इन पृष्ठों में सोमा का मन लग रहा था, लेकिन अभी तो डायरी का बहुत सा भाग शेष था; फिर ड्यूटी पर पहुँचने की भी जल्दी थी । पता नहीं किस रोगी को क्या आवश्यकता हो । हो सकता है नरेश को ही कुछ आवश्यकता हो । और फिर बेड नम्बर आठ पर तो उसे आज विशेष ध्यान देना था । अब उसकी समझ में आया कि डाक्टर का वह निर्देश नरेश के लिए ही था । तो क्या आज उसी की हालत खतरनाक है ? वह सहसा यह समझते ही दहल गयी । जब वह यहां दाखिल कराया गया था तब भी उसकी हालत बहुत खराब थी; धीरे धीरे सुधरने लगी थी । लगता था वह ठीक हो जायगा । लेकिन अभी चार दिन से फिर न जाने क्या हुआ कि उसकी हालत एकदम बहुत बिगड़ गयी और आज तो डाक्टर ने उसके लिए 'खतरनाक' तक कह दिया ।

वह सोचते सोचते 'न जाने' शब्द पर रुकी । क्या सचमुच वह भी नहीं जानती कि क्यों सहसा ही नरेश की हालत बिगड़ी ?

उसने अपने विचारों को झंझोड़ कर शांत किया और फिर डायरी के कई पृष्ठ पलट दिए । एक पृष्ठ पर उसकी दृष्टि अटक गयी :

वज्रपात ! एक साथ दो वज्रपात !

पृष्ठ के आरम्भ में ही ऐसे शब्द देखकर वह चौंकी और आगे पढना शुरू किया :

कल पिता जी का देहान्त हो गया । मैं उस समय उनके पास न था । डाक्टर को लेने गया था । मुझे पिता जी का दुलार कभी नहीं मिला था । उन्होंने कभी प्रेम से मुझे नहीं पुकारा था, न कभी मेरे सिर पर हाथ फेर कर आशीर्वाद ही दिया था । मुझे उनके सामने जाते डर लगने लगा था, फिर भी उनकी मृत्यु से मुझे बहुत दुख हुआ है । मुझे

सहसा ऐसा लग रहा है कि अब मैं बिलकुल अकेला हू । अकेला तो मैं पहले भी था, क्योंकि पिता जी का होना न होना बराबर था और घर में कोई भाई बहन थे ही नहीं । लेकिन फिर भी न जाने क्यों उनकी मृत्यु पर मुझे असहायावस्था का अनुभव हो रहा है। मैं उनके अन्त समय में उनके पास न रहा, यह बात मुझे कचोट रही है और शायद सदा ही कचोटती रहेगी । मुझे लगता है कि उस समय वह अवश्य मुझे प्यार से 'बेटा' कहकर अपने उदासीन व्यवहार के लिए क्षमा माँगते, मुझे छाती से लगा लेते और फिर भावावेश में अपने काँपते गरम होठों से मेरा माथा चूम लेते । उफ़, अब यह अवसर कभी न आयगा । मेरी यह प्यास कभी शांत न होगी । काश, मैं वहीं होता ।

अब और आगे लिखने की इच्छा तो नही हो रही, लेकिन जब हृदय पर भार अधिक होता है तो वह उसे हल्का करने का रास्ता ढूंढ़ा करता है । दु:ख में मनुष्य अधिक भावुक हो जाता है । इसलिए लिख रहा हूँ :

नीलम ने आज साफ़ इन्कार कर दिया । उसे कार में घुमाने वाला साथी चाहिये । आलीशान कोठी और तरह तरह के वे सामान चाहियें जिनको जुटाना तो दूर, जिनके विषय में सोचना भी मेरे लिए संभव नही । और फिर अब तो मेरे पिता जी का हाथ भी मेरे ऊपर नहीं रहा ।

मैं नीलम को ग़लत समझा था । अब मुझे उस दिन की उसकी बात का आशय समझ में आ रहा है । तब हम लोग पार्क में बैठे हुए थे । नीलम मेरे कन्धे का सहारा लेकर अधलेटी सी एक फूल को सूँघ रही थी । उसने एकाएक मुझसे प्रश्न किया था, "तुम्हें तितलियाँ पसंद हैं या पतंगे ?"

मैंने उसकी ओर देखकर कुछ सोचा था, फिर कहा था, "पतंगे ।"

सुनते ही वह एकदम सीधी बैठ गयी थी और अंगुलियां नचाती हुई बोली थी, "हूं ! की न फिर वही सस्ती भावुकता की बात ! जरा आंख

खोल कर तो देखो तितली कितनी सुन्दर होती है। जी चाहता है उसके साथ साथ ही उड़ने लगूँ। और पतंगे—क्या छोटे छोटे से घिनौने जीव है!" और उसने फूल को सूँघा था, फिर एक ओर फेंक दिया था।

मैं चुप ही रहा था। थोड़ी देर बाद ही वह उठ खड़ी हुई थी और फूल को कुचलती हुई चली गयी थी।

पिता जी का वियोग तो शायद मैं सह भी लेता, लेकिन नीलम की बात कैसे सह पाऊंगा? वह स्वयं ही तो मेरी ओर बढ़ी थी। फिर इस तरह बीच में क्यों छोड़ गयी? तितली है न!

कभी कभी भावों का छोर नहीं मिलता। वे तीव्र प्रवाहिनी कूलहीना सरिता के समान बहते ही चले जाते हैं। आज मैं माँ की कल्पना कर रहा हूँ। सफेद साड़ी पहने एक भव्य आकृति होती होगी मां की। बड़ी मीठी और प्यार से भरी। फूलों की सेज सी उसकी गोद में सिर रख कर सोने में स्वर्ग जैसा सुख मिलता होगा। वह बालों में अंगुलियां डाल कर स्नेह से सहलाती होगी। मुझे मां का और उसके प्यार का तो कुछ अनुभव नहीं है, लेकिन वह शायद इसी तरह का आचरण करती होगी।

लेकिन कल्पना का सहारा तो बालू की दीवार है। सपनों का जीवन ही कितना! बस, आंख खुलने भर की देर है, सब विलीन हो जाता है।

मन में अजीब सी बेचैनी है। बिलकुल ऐसी ही बेचैनी पाँच साल पहले भाभी के जाने से हुई थी। दूर के रिश्ते की एक भाभी यहां रहने लगी थीं और मैं अकसर उनके पास ही रहा करता था। मुझे वहां कुछ शांति मिलती थी, अच्छा लगता था। वह भी मुझे बहुत स्नेह करती थी। शायद इसलिए कि उनके कोई संतान नहीं थी। एक अभाव उन्हे भी था और एक मुझे भी। लगता था कि दोनों एक दूसरे के पूरक थे। लेकिन यह साथ अधिक दिन तक न रहा। सुख खानाबदोश होता है। एक ही स्थान पर अधिक दिन टिकना उसकी आदत नहीं। दो वर्ष बाद

ही भाई साहब का तबादला हो गया और भाभी, जो मां भी थीं, चली गयीं। उनके जाने पर मैं बहुत रोया था। कई दिन तक गुमसुम बना बैठा रहा था।

अब लिखने में सुख नहीं मिल रहा है। अब तो सोचने को मन कर रहा है। बीती बातें सोचने में भी एक विशेष तरह की शान्ति मिलती है। इसलिए अब, बस !

सोमा के माथे पर पसीने की बूंदें झलक आई थीं। उन्हें रूमाल से पोंछ कर उसने कलाई पर बंधी घड़ी की ओर देखा। छोटी सी घड़ी की नन्ही सुइयां रुकी हुई सी लग रही थी। वह उन्हें एकटक देखती रही, लेकिन वे आगे न बढ़ी—ठीक वैसे ही जैसे मुंह से बाहर निकालने पर थरमा[illegible]पारा ठहरा रहता है, जैसे मर जाने पर धड़कन रुक जाती है। मरने की बात आते ही उसे घड़ी के डायल पर नरेश का मुरझाया हुआ चेहरा दिखाई दिया। मृत्यु और नरेश ! वह सिहर गयी और विचारों को जबरन बाहर निकालते हुए उसने डायरी पर फिर नज़र डाली। उसे लगा जैसे डायरी का वजन अब कुछ अधिक हो गया है। वह ठंडी और गिलगिली लग रही है। जैसे कि आदमी मरने पर हो जाता है। लेकिन उसे अन्त तक पढ़ जाने की उत्सुकता थी, इसलिए उसने सरसरी निगाह से देखते हुए जल्दी जल्दी कुछ पृष्ठ और पलटे।

एक जगह लिखा था :

डाक्टर ने प्लूरिसी बताई है। बहुत सी दवाएं और इंजेक्शन लिख कर दिये हैं। साथ ही यह भी कहा है कि यदि रोकथाम न की गयी तो क्षय होने का भी खतरा है। फेफड़े पर प्रभाव हो गया है। लेकिन मैं कोई ध्यान न दूंगा। किसी भी दवा का सेवन नहीं करूंगा। दवाओं का प्रयोग मैं अप्राकृतिक तो नहीं समझता, लेकिन अब मेरी इच्छा इसके लिए नहीं हो रही है। दवा क्यों लूं ? और फिर अब अच्छा होकर मुझे करना भी क्या है !

जिस धरती पर वर्षा नहीं होती उसकी मिट्टी भुरभुरी हो जाती है

और यदि वर्षा सदा के लिए ही बन्द हो जाये तो एक दिन वही धरती रेगिस्तान में बदल जाती है—सोमा सोचने लगी । कितनी उपेक्षा सही है उसने अपने जीवन में ! वह आगे पढ़ने लगी । आठ दस पृष्ठों के बाद लिखा था :

दफ्तर के कुछ साथी जबरदस्ती सेनेटोरियम भेज रहे हैं । अब मुझे खांसी बहुत आने लगी है, सांस भी जल्दी ही फूल जाती है, लिखा भी नहीं जाता, लेकिन सब ठीक है, अच्छा होता यदि मुझे सेनेटोरियम जाने को मजबूर न किया जाता । आखिर मेरे जीवन का उपयोग ही क्या ?

अब सोमा पढ़ने में विशेष सतर्क हो गयी थी, क्योंकि इसके बाद की बातें उसके सामने की थीं । उसे यह जानने [illegible] थी कि यहा के बारे में नरेश क्या सोचता है । वह आगे पढ़ने [illegible] :

सेनेटोरियम में पहला दिन । मन उन्मन है, परेशान है । वातावरण अपरिचित है । यहां सभी लोग व्यावहारिक जान पड़ते हैं । डाक्टर ने मेहनत का काम करने को मना किया है । लिखने की भी आज्ञा नहीं है । लेकिन मैं यह क्रम छोड़ना नहीं चाहता, इसलिए थोड़ा ही लिखूंगा ।

यहां के सारे व्यापार नियमबद्ध हैं । बड़ा कृत्रिम सा जीवन है । कृत्रिमता मेरे जैसे व्यक्ति के लिए एक बोझ है, इसलिए अभी तक मैं परेशान हूं । डाक्टर भी परेशान मालूम पड़ता है । मेरी हालत से होगा । होने दो ।

मेरी नर्स कुछ भावुक लगती है । वह मेरे सामने आकर बहुत अधिक गम्भीर हो जाती है । अकसर वह मेरे पास खड़ी खड़ी मुझे गौर से देखती रहती है । मेरे लक्ष्य करने पर वह बड़े स्नेह से बातें करती है । लगता है उसे मुझ से सहानुभूति है । मैं यह सब नहीं चाहता । सहानुभूतियों का बोझ अब आखिरी दिनों में ही क्यों उठाऊँ ? लेकिन मुझे क्या !

सोमा पढ़ते पढ़ते चौंक कर रुक गयी, 'लेकिन मुझे क्या !' कितनी

उदासीनता है । फिर उसके विचारों में पिछले चार पांच महीनों में नरेश के साथ हुई बातें घूम गयीं । कैसे वह उस से खुली. नरेश को सिस्टर कहने से मना किया, उससे न जाने क्या क्या बातें हुई । एक दिन डाक्टर ने उससे कहा था, "तुम्हारे नम्बर आठ की हालत असाधारण रूप से सुधरती जा रही है । यही बात रही तो एक दिन वह अवश्य ठीक हो जाएगा ।" लेकिन उसके बाद ? सोमा ने फिर डायरी के पृष्ठ पलटे :

सोमा मुझे अच्छी लगने लगी है । नीलम की तरह वह सुन्दर तो नहीं है, वैसी शोख और चंचल भी नहीं, लेकिन प्यास जब असह्य होती है तो वह यह नहीं देखती कि पानी स्वच्छ सुराही का है या जोहड़ का । यह बात मनोवैज्ञानिक रूप में सही हो, लेकिन मैं उसे जोहड़ का पानी नही समझता । उसमें वह सुन्दरता है जो नीलम में नहीं थी । इन पांच महीनों में मैं उसकी आत्मा को पहचान गया हूं ।

आज डाक्टर ने परीक्षण के बाद मुझसे कहा, "तुम अगले सप्ताह तक बिलकुल ठीक हो जाओगे ।" बड़ी देर तक तो मुझे उसकी बात पर विश्वास न हो सका । लेकिन सोमा ने आकर मेरा आश्चर्य शांत किया । कुछ भी हो इसका सारा श्रेय उसी को है ।

कल उससे स्पष्ट बात करूंगा । अब तक तो इसीलिए रुका रहा था । डूबती हुई नाव में किसी को निमंत्रण देना तो ठीक न था । लेकिन अब तो तूफान थम गया है ।

आगे पढ़ने से पहले ही सोमा कांप गयी । बिना किसी भूमिका के कुछ शरमाते हुए, कुछ मुसकराते हुए नरेश का प्रस्ताव रखना, लेकिन बहुत ही साधारण भाव से उसका स्पष्ट मना कर देना और तुरन्त वहा से चल देना, फिर सारे दिन उसके पास न जाना, उसे याद आया । उसने अस्वीकार क्यों कर दिया ? क्या वह नरेश को चाहती न थी ?

उसके बाद नरेश की मनःस्थिति क्या हो गयी, यह वह देख रही है । फिर भी पढ़कर देखने के लिए पृष्ठ पलटा:—

मैं समझ नहीं पा रहा हूँ कि ऐसा उसने क्यों किया ? क्या अब

तक का उसका आचरण दिखावा मात्र ही था ? क्या इस बार भी मेरे पहचानने में भूल हुई ? लेकिन नहीं, इस बार तो मैं संदिग्ध हूं ही नही।

वह उसके बाद दिखाई भी न दी, इधर आई ही नहीं। मैं उससे एक बात करना चाहता हूँ। लेकिन नहीं, मैं अब कुछ न कहूँगा।

उफ़, आज फिर खांसी का दौरा उठ रहा है। उठने दो। भाग्य से लड़ने की ताकत अब मुझ में नही है।

आज एक एक करके फिर पुरानी बातें याद आ रही हैं: मां की मूर्त्ति, पिता जी, भाभी और वह तितली नीलम। सब गये, छूट गये। और अब आखिरी आशा भी टूट गयी। खैर।

सोमा ने एक लम्बा सांस भरा और डायरी बंद कर दी। देर तक वह उसे ही देखती रही। उसके सामने नरेश का सारा जीवन किताब की तरह खुला पड़ा था। वह उसे पढ़ चुकी थी, जान चुकी थी। पांच महीने पहले का खांसता और बार बार थूकता नरेश उसकी आँखो के सामने छा गया। फिर वह आकृति हंसते बोलते नरेश में बदली और बाद में वह ऐसी हो गई जिसका बुखार देखकर डाक्टर ने आज कह दिया था, "खतरनाक।" उसका सुन्दर किन्तु कुम्हलाया और सूखा चेहरा उस की आंखों में चुभने लगा। आज उसे आभास हुआ कि उसका भी कितना मोल है ! उसकी एक 'हाँ' से नरेश बच सकता है, मौत के दरवाजे से लौट सकता है।

मौत ! सुनते हैं, मौत बड़ी डरावनी होती है। खूँखार शेर से भी डरावनी। सोमा सहम गयी।

लेकिन वह 'हां' करे भी तो कैसे ? वह विधवा है और विधवा के लिए समाज का क्या विधान है, इसे वह जानती थी।

तो क्या वह चुपचाप सब देखती रहे ? लेकिन यह सोचते ही डाक्टर की बात उसके मस्तिष्क में चक्कर काटने लगी, जिसका अर्थ होता मौत—नरेश की मौत। मरने पर न जाने आदमी कैसा हो जाता है !

कितना डरावना, कितना गिलगिला। और उसे सुधीर की याद हो आई। सुधीर—उसका पति—भी तो मरा था। वह भी डरावना और गिलगिला हो गया होगा। सोमा को तो उसका ध्यान भी नहीं। वह तो उसके दम तोड़ने के बाद ही बेहोश हो गयी थी। उसके बाद आज तक तो न जाने कितनों को मरता हुआ देखा है। अब उसे डर भी नहीं लगता, घबराहट भी नहीं होती। अस्पताल की नर्स होने के कारण अब तो उसे आदत सी पड़ गयी है। लेकिन नरेश की मौत की कल्पना करते ही वह न जाने क्यों बदल जाती थी। तो क्या वह 'हां' कर दे? लेकिन सुधीर के मरते समय उसने प्रण किया था कि जीवन भर उसी का नाम लेकर बिता देगी। फिर यह सुधीर की आत्मा के साथ विश्वासघात होगा—उस सुधीर की आत्मा के साथ जिसे उसने जीवन की समस्त भावनाओं से प्यार किया था।

वह उठी और कमरे में चहलकदमी करने लगी। उसकी समझ मे कुछ नहीं आ रहा था।

कमरे के बल्ब पर पतंगे टकरा रहे थे। उसके ऊपर टकराने वाले पतगों में से कितने ही जलकर मर जाते थे। सोमा देर तक उन्हें देखती रही। बल्ब की चमकदार गोलाई में उसे अपनी आकृति उभरती हुई दिखाई दी और धीरे धीरे पतंगों ने नरेश का रूप ले लिया। अब वह उधर अधिक देर तक न देख सकी और दृष्टि हटाकर डायरी खोल कर दोबारा उसका अन्तिम पृष्ठ पढ़ डाला :

"और अब आखिरी आशा भी टूट गयी।

कितनी वेदना, कितनी निराशा थी इस पंक्ति में। सोमा कांप गयी। उसे सामने नरेश का तमतमाया और कांतिहीन चेहरा लुढ़कता हुआ दीखा। डाक्टर और जोर से कहता हुआ लगा, "खतरनाक! खतरनाक!" फिर सुधीर की आकृति उसकी आंखों में घूमने लगी।

सहसा वह दृढ़ता से उठी और वार्ड की ओर चल दी। उसके कानों में पांच साल पहले नरेश की ही तरह बिस्तर पर पड़ा मरणासन्न सुधीर

जोर जोर से कहने लगा, "सोमा, जिंदगी इतनी सस्ती नहीं है जो भावनाओं के कारण बलिदान कर दी जाय। तुम्हारा यह प्रण कोरी भावना ही तो था। यदि उसे छोड़कर तुम किसी की जान बचा सको तो इससे अच्छा अवसर नहीं मिलेगा। कौन कहता है, मुझे इससे शाँति नहीं मिलेगी ? व्यर्थ भ्रम में मत पड़ो, सोमा।"

सोमा जैसे चीखने को हुई। उसने घबरा कर कानों पर हाथ रख लिये, और लपक चली।

नरेश उसी अवस्था में पड़ा हुआ था। नींद थी या बेहोशी—यह वह नहीं समझ सकी। वह उसके पास खड़ी उसके क्लांत, थके से मुख को देखती रही। लगता था जैसे लंबी मंजिल तय करने के बाद कोई पथिक सो गया हो। वह और निकट बढ़ी और एक टक नरेश को देखने लगी। उसे लगा जैसे वह चेहरा सुधीर का हो, जैसे सामने सुधीर सोया हुआ हो।

तभी थोड़ी दूर पर लगे बल्ब से टकरा कर एक अधजला पतंगा उसके हांफते वक्षस्थल पर आ गिरा। उसने उसे देखा, फिर नरेश को और नरेश में सोये सुधीर को, और सहसा झुककर पतंगे को चूम लिया।

सुबह डाक्टर ने नरेश का परीक्षण करके चार्ट में लिखा, "खतरे से बाहर।"

रेगिस्तान उर्वरा धरती में बदलने लगा था।

प्रत्यावर्तन

निम्मी को घरवालों के सुपुर्द कर रहमत बाहर आ गया। उसने कुछ सोचते हुए सड़क के किनारे खड़ी अपनी रिक्शा का हैंडिल सम्हाल लिया और पैदल ही चलने लगा। उसने रोज की तरह आसमान की ओर दृष्टि उठाकर डूबते हुए सूरज की ओर देखा। आज उसे सूरज की लाली कुछ कालिख लिये हुए लग रही थी। सड़क पर पहुँच कर भी वह रोज की तरह रिक्शा पर चढ़ा नहीं बल्कि पैदल ही चलने लगा। सामने से एक रिक्शा आ रही थी। उसने रास्ता मांगने के लिए घंटी बजायी। रहमत ने बिना उसकी ओर देखे ही अपनी रिक्शा बायीं ओर बचा ली और पहले की तरह ही चलने लगा।

चाबी वाली रेल कम से कम तीन रुपये की तो

आयेगी ही, वह सोच रहा था और कल ही तो निम्मी की वर्षगांठ है। कल तक तीन रुपये ज्यादा कमा लेना कैसे हो सकता है? आज ही चार रुपये मिले हैं। कल तो साढ़े तीन ही मिले थे। इनमें से दो रुपये तो रिक्शा का किराया ही चला जाएगा। डेढ़-दो बच पाते हैं सो घर का खर्च ही पूरा नही पड़ता। फिर जुबेदा की दवा को भी बारह आने चाहिये। उसके लिए फल भी जरूर ही ले जाने पड़ेंगे। लेकिन निम्मी की रेलगाड़ी भी लानी आवश्यक है। उसने कितनी आशा के साथ अपनी माँग रखी थी, और वह भी स्वयं उसके पूछने पर, नहीं तो उसे क्या कमी है? जब निम्मी ने उसे बताया कि कल उसका जन्म दिन है और पार्टी में उसे भी अवश्य आना है, तो रहमत ने कहा था, "जरूर आऊंगा, बिटिया बोलो, तुम्हारे लिये साल गिरह का क्या तोफा लाऊं?"

निम्मी उसकी गोद में बैठी थी, सहसा उठकर सीधी खड़ी हो गयी थी और बालकोचित सरलता से बोली, "हम तो चाबी वाली रेल लेंगे।"

रहमत ने उसके सुनहरे घुँघराले बालों को अंगुलियों से सहलाते हुये उस समय तो कह दिया था, "अच्छा, जरूर ला देंगे, तुम्हें रेलगाड़ी।" और रहमत कल अवश्य आने का वचन देकर चला आया था। किसी ने आवाज दी "रिक्शा खाली है?" लेकिन रहमत ने उस पर ध्यान नही दिया और गर्दन को एक झटका देकर गद्दी पर बैठ गया।

यह छः वर्षीया निम्मी उससे अच्छी तरह हिल गई थी। उसे भी न जाने क्यों इसे देखकर कुछ स्वर्गिक सा सुख मिलता था। इसीलिये प्रतिदिन सुबह उसे स्कूल पहुंचाता, फिर वापस लाता और इसके बाद भी अवकाश निकाल कर एक बार शाम को उसके साथ कुछ देर खेलने अवश्य आता था। उधर आसमान की देहली से सूरज की आखिरी किरण ने मुँह फेरा, इधर निम्मी के दरवाजे पर रहमत ने आवाज लगायी। तुरन्त ही फलोंदार फ्राक में सजी हुई गुड़िया सी निम्मी उछलती हुई बाहर आती और रहमत के दोनों हाथ पकड़ कर कहती 'आज तुमने बड़ी

देर कर दी काका उत्तर में रहमत उसे उठा लेता फिर लॉन में बैठकर उसके सुनहरे बालों को अंगुलियों से सहलाते हुए उससे न जाने क्या क्या बातें करता रहता। घोड़ा बनकर चक्कर खिलाता या कहानी सुनाता। निम्मी की किलकारियों से उसकी दिन भर की थकान मिट जाती। जैसे ही शाम का सलेटी रंग काला पड़ने लगता, निम्मी उसकी गोद में खेलती खेलती ही सोने लगती। फिर रहमत उठता और उसे घर में अच्छी तरह सुलाकर चला जाता।

सामने से एक मोटर आ रही थी। उसकी हेडलाइट का सीधा प्रकाश उसकी आंखों पर पड़ा और चौंधियां गयी। तभी उसे कुछ ध्यान आया और वह रुका; जेब से माचिस निकाल कर रिक्शा का लैम्प जलाया फिर उस पर बैठ कर चल दिया। सड़क पर कुछ लोग पैदल जा रहे थे। उसने उन्हें देखा लेकिन हमेशा की तरह, 'बाबू जी, रिक्शा ?' की आवाज नहीं लगायी।

रिक्शा चलाने से पहले रहमत, रहमत न था। वह चोरी करता था, जेब काटता था, जुआ खेलता था, और भी न जाने क्या–क्या करता था किन्तु अब इस छोटी सी बालिका ने उससे यह सब छुड़वा दिया था। हैवान, इन्सान और देवता के बीच की विभाजन रेखाएं अत्यन्त सूक्ष्म होती है। इन्सान में शेष दोनों के गुण भी रहते हैं, कब, किस में कौन सा गुण प्रमुखता प्राप्त करले, नहीं कहा जा सकता।

अभी वर्ष भर पहले की ही तो बात है। रहमत ने किसी की जेब काट ली थी। लेकिन कुछ असावधानी होने के कारण वह भांप गया और 'चोर चोर' कहते हुए उसने रहमत का पीछा किया। रहमत भी भागा। उसके पीछे एक भीड़ भागी। यदि कहीं रहमत उनके हाथ आ जाये तो उस दिन उसकी खैर नहीं यही सोच वह दम तोड़कर भाग रहा था। सहसा एक छोटी सी गली आई। उसमें से निकल कर वह दूसरी सडक पर पहुँच गया भीड़ पीछे रह गयी थी। रहमत भागता गया और एक कोठी की दीवार फांद कर अन्दर कूद आया।

सूरज छिप चुका था। कम्पाउण्ड में दूर तक कोई नहीं था। बस, थोड़ी दूर पर एक छोटी सी बच्ची खेल रही थी। सहसा रहमत के कूदने के स्वर से वह चौंक गयी किन्तु डरी नहीं। वह कुछ देर उसे गौर से देखती रही फिर धीरे धीरे उसकी ओर बढ़ी। रहमत हांफ रहा था। उसे डर हुआ कहीं यह चीख न पड़े। इसलिए उसका मुँह पकड़ने को हाथ बढ़ाया किन्तु वह बोल पड़ी "चोट तो नहीं लगी।" रहमत का हाथ रुक गया। दीवार से कूदने से चोट भी लग सकती है। उसने सोचा भी न था। ऐसे कठिन समय में उसे यह सोचने का अवकाश भी न था। रहमत कुछ कहना चाह तो रहा था किन्तु हाथ जोड़ने के अतिरिक्त कुछ न कर सका।

"तुम कौन हो ?" बालिका ने पूछा।

रहमत घबराया। वह इस प्रश्न का क्या उत्तर देता, बस, बड़ी दयनीय मुद्रा में उसे देखता रहा।

बालिका उसकी ओर बड़ी गौर से देख रही थी। वह सहसा अपना प्रश्न भूल कर दोनों हाथ से ताली बजाती हुई बड़े जोर से हँस पडी और कूद कूद कर कहने लगी "अरे, इतने बड़े हो गये और कमीज के बटन भी लगाना नहीं आता।" और फिर हो-हो करके हंस पड़ी।

रहमत ने देखा कि उसकी कमीज के बटन गलत लग रहे थे। नीचे के बटन ऊपर के सूराख में लगे थे। वह जल्दी से उन्हें ठीक करने लगा। उसे आश्चर्य हो रहा था कि यह बच्ची उससे डरने के स्थान पर उससे मजाक कर रही है।

वह अब तक दूर खड़ी हुई ही बातें कर रही थी। पास आकर बोली, "इस तरह नहीं, इस तरह लगाओ। तुम्हारी मम्मी ने सिखाया नहीं क्या ?" और उसने बटन लगा दिये। रहमत चुपचाप देखता रहा। वह फिर रहमत का हाथ पकड़ कर बोली, "चूहा भाग खेलोगे ?"

रहमत ने कोई उत्तर न दिया। वह कुछ समझ ही न पा रहा था।

वह फिर बोली, "तुम इस वक्त खूब आये ! आज हमारे साथ खेलने वाला कोई नहीं था। आया को डैडी ने निकाल दिया। मम्मी कहती हैं, उसने चोरी की थी। मम्मी के टाप्स चुरा लिये थे। डैडी कहते है उसे अब पुलिस पकड़ ले जायगी फिर उस पर मार पड़ेगी। उसे जेल मे बन्द कर देंगे और उसे न वहां टाफी मिलेंगी और न अच्छी अच्छी नयी फ्राक्स। तुम्हें पता है चोरी क्या होती है ?"

रहमत आंख फाड़े उसे देखने के अतिरिक्त कुछ न कर सका।

वह फिर बोली, "नहीं पता ? हमारी किताब में लिखा है, चोरी करना बुरा काम है। अच्छा यह बताओ, लोग चोरी करते क्यों हैं ?"

रहमत तो अभी प्रकृतिस्थ नही था यदि प्रकृतिस्थ भी होता तो वह क्या, कोई भी इस प्रश्न का सीधा उत्तर न दे सकता था, इसलिए रहमत इस बार भी चुप ही रहा।

"तुम तो बोलते ही नहीं ? क्यों, क्या तुम्हारी मम्मी ने बोलने को मना कर दिया है ? तुम तो डर रहे हो। क्या तुम्हारे डैडी भी तुम्हें मारते हैं ? बराबर वालों के रमेश के डैडी तो बहुत मारते हैं। उससे तो हमें भी डर लगता है। लेकिन हमारे डैडी नहीं मारते। वह बहुत अच्छे हैं यहां क्यों डर रहे हो ? यहा कोई नहीं मारेगा। चलो मेरे साथ चूहा भाग खेलो, चलो।"

"ओ, रिक्शा।" पीछे से किसी ने पुकारा। रहमत ने अभ्यासवश पैडिल चलाना रोक दिया किन्तु दूसरे ही क्षण बिना उस ओर देखे वह आगे बढ़ गया। सवारी बैठाने को उसका मन नहीं कर रहा था।

उसके बाद रहमत ने सचमुच कभी चोरी नहीं की थी। वह उस बालिका से हर रोज मिलने जाता था और उसके साथ चूहा भाग खेलता था। उस छोटी सी भोली भाली बालिका की सीधी सादी बातों में न जाने क्या था कि उसके कठोर हृदय के समस्त विचारों को बदल दिया था। उरद के दाने की सफेदी की तरह कठोर से भी कठोर हृदय मे भी कहीं न कहीं छिपी हुई कोमलता होती है जो अवसर पाकर ऐसी

उभरती है कि सम्पूर्ण हृदय को प्रभावित कर डालती है। इस बालिक के शब्दों ने भी रहमत के हृदय के ऐसे किसी सोये सुरीले तार को छू दिया था।

बाजार आ गया था। चौराहे की बाँके पनवाड़ी की दुकान पर रोज की तरह ही भीड़ लगी हुई थी। उसकी दुकान बिजली की रॉड्स की रोशनी मे जगमगा रही थी। उसकी दुकान के पास एक और पान की दुकान भी है जिसकी दुकानदारी भी उसकी धुंधली रोशनी की तरह ही टिमटिमाती हुई चला करती है। रहमत ने एक नजर बाँके की दुकान की ओर डाली फिर कुछ याद करके एक ओर रिक्शा खड़ी कर दी। टिमटिमाती हुई दुकान के मालिक पर उसे कुछ तरस आया और उसने उसी की दुकान से एक बीड़ी का बण्डल खरीद लिया।

रिक्शा की लालटेन से बीड़ी सुलगा कर उसने एक कश लिया ही था कि उसे याद आया कि निम्मी ने उससे भविष्य में कभी बीड़ी न पीने का वचन ले लिया था। उसके बाद से आज तक उसने बीड़ी नहीं पी थी किन्तु आज न जाने कैसे अपने आप ही उसके पांव बीड़ी लेने बढ़ गये, न जाने कैसे उसके मन में बीड़ी पीने की बात आयी। आज अनजान में ही, स्वतः ही इतने दिनों से बनाया हुआ उसका नियम टूटा जा रहा था। जब मन पर अधिक बोझ आ पड़ता है तो बन्धन और नियम टूट जाया करते हैं, यह सोच कर रहमत ने एक और लम्बा कश लिया और रिक्शा लेकर चल दिया।

दाहिनी ओर की सड़क पर भीड़ अधिक रहा करती है, इसलिए रहमत को धीरे धीरे चलना पड़ रहा था। इस बाजार में बिसातखाने की, जूतेवालों की, तेल और सुगन्धवालों की दुकानें तो नीचे की मंजिल में है और दूसरी मंजिल पर वेश्यालय है। नीचे की दुकानें जगमगा रही थी, ऊपर की दुकानें छमछमा रही थीं।

रहमत की नजर सहसा सामने की दुकानों की ओर उठ गयी : अन्य सामानों के साथ कुछ खिलौने भी उस पर रखे थे। रहमत ने

सोचा इसके पास चाबीवाली रेल भी अवश्य होगी । वह उस ओर बढ़ने को हुआ किन्तु दूसरे ही क्षण रुक गया । वह खरीद पायेगा ? जेब में जो पैसे हैं, उनसे तो घर का खर्च भी पूरा नहीं हो पाएगा, फिर रिक्शा का किराया, जुबेदा की दवा यह सब कैसे हो पाएगा ?

सड़क पर चलते हुए सब आदमी उसे प्रश्नवाचक चिह्न से लग रहे थे, सब दुकानो पर प्रश्नवाचक चिह्न बने हुए थे और सब पर विभिन्न रगों के छोटे बड़े साइज के प्रश्नवाचक चिह्न ही बिकने को रखे मालूम दे रहे थे । रहमत का मस्तिष्क चक्कर काटने लगा था । वह सहसा कुछ नही सोच पा रहा था और उसने घबरा कर अपनी आँखें बन्द कर ली।

निम्मी के जन्मदिवस का वृहद् आयोजन उसकी आंखों में घूमने लगा । वहाँ लोग तरह तरह के उपहार लेकर आयेंगे, उनके बीच उसका खाली हाथ जाना किसी भी तरह ठीक न होगा और ऐसा करना भी ठीक नही कि वह वहां न जाये । अपनी निम्मी की एक छोटी सी अभिलापा पूरी करने योग्य भी क्या वह नहीं रहा ? उसका हृदय कचोट उठा । चाहे किसी भी तरह क्यों न हो उसे चाबी वाली रेल अवश्य खरीदनी होगी । किन्तु कैसे ? और फिर उसके सामने प्रश्नवाचक चिह्न एक के बाद एक आने लगे ।

सड़क पर एक महाशय सफेद मलमल का झीना सा कुर्ता पहने जा रहे थे । रहमत रिक्शा से उतर पैदल ही चल रहा था । वह महाशय उसके पास से ही निकले । रहमत ने देखा कि उनकी लगभग पारदर्शक जेब में पाँच रुपये का नोट चमक रहा है । वे महाशय बड़ी लापरवाही से हाथ हिलाते हुए चले जा रहे थे । सहसा रहमत के हृदय मे एक तूफान उठ खड़ा हुआ । उसकी अंगुलियों का सोया हुआ अभ्यास कुलबुलाने लगा । उनकी सतर्क फुरती अंगड़ाई लेने लगी । पांच का नोट । सब काम हो सकते हैं, जुबेदा की दवा के पैसे, रिक्शा का किराया, और निम्मी की चाबीवाली रेल, सब । और रहमत की चाल तेज हो गयी ।

किन्तु निम्मी के सामने की गयी बातें, भविष्य में चोरी जैसा कोई काम न करने का प्रण, वर्ष भर की यह तपस्या, सब उसके सामने आकर रोकने लगे। पाँवों को जैसे निम्मी की नन्हीं नन्हीं बांहें बेड़ियाँ बनकर रोकने लगी। जिस निम्मी ने उसका जीवन क्रम ही बदल दिया, क्या उसी के लिए वह फिर वही काम प्रारम्भ कर दे ? क्या वह उसी कलुषित पथ की ओर वापस लौट जाये ? लेकिन वर्त्तमान की समस्या साकार होकर उसकी अंगुली पकड़ कर आगे की ओर खींचने लगी। उसे लगा कि वह पांच का नोट पारदर्शक हो गया है और उसमें से चाबीवाली रेल और उसे लिये हुए प्रसन्न निम्मी की आकृति उसे दीखने लगी है। वह एक बार दृढ़ होकर आगे बढ़ा। जिस धन को पा लेने से इतनी सारी चिन्ताएं दूर हो सकती हो, उसे प्राप्त करने में हिचकिचाहट क्यों हो ?

परिस्थितियों का अंकुश मन को अपने अनुसार मोड़ लेता है किन्तु मन की कमजोरी भी इसके लिए कम उत्तरदायी नही होती। ऐसे चरमस्थल पर छोटा सा बहाना भी मन को उसी पथ पर वापस लाने के लिए पर्याप्त होता है। रहमत एक कदम ही बढ़ा होगा कि दाहिनी ओर से आवाज आयी, "काका।"

आवाज सुनकर रहमत के पांव जहां के तहां रुक गये। क्षणभर मे ही एक उथल-पुथल सी हो गयी। उस पर हावी होने वाला हैवान सहसा ही सिर छिपा कर बैठ गया। उसने स्वाभाविक रूप से मुडकर उधर देखा, आवाज निम्मी की थी। वह मम्मी के साथ पार्टी के लिए सामान खरीदने आयी थी और एक दुकान के सामने खड़ी थी। रहमत ने एक नजर मलमल के कुर्ते वाले उन महाशय पर डाली और निम्मी की ओर मुड़ गया।

पास पहुँच कर उसने निम्मी को गोद में उठा लिया। वह बोली "कहाँ, जा रहे थे, इतनी तेजी से ? रिक्शा कहां है ?"

"एक शैतान पीछा कर रहा था।" रहमत ने कहा, "लेकिन अब

कोई डर नहीं है, उसका । अब तुम मेरी गोद में जो हो ।"

किसी रिक्शा वाले ने आवाज लगाई एक सवारी 'स्टेशन को' सहसा रहमत को अपनी चिंताओं का हल मिल गया । रात भर रिक्शा चलाऊंगा, गाड़ियां आती ही रहती हैं । एक रात नहीं सोया तो बीमार थोड़े ही पड़ जाऊंगा । निम्मी को अपनी मेहनत का उपहार तो दूंगा, चोरी का तो नहीं और मुस्कराकर निम्मी को देखने लगा ।

आसमान के तारे मुस्करा उठे ।

एक फरिश्ते का जख्म

मीना की कहानी :

एक अव्यक्त सी सिसकी लेते हुए मीना ने साड़ी का आंचल गिरा दिया और दूसरी साड़ी पहनने लगी। उसका निरावरण वक्षस्थल जल्दी जल्दी ऊपर नीचे हो रहा था जैसे तूफान आने से पहले समुद्र की लहरों मे उतार चढाव आ जाता है। लहरों का चढ़ाव एक दिन शान्त तो हो जाता है किन्तु मीना के जीवन से इस चढ़ाव को शान्त नहीं होना था।

साड़ी की चुनन करते हुए उसने ड्रेसिंग टेबिल के बड़े से शीशे पर नजर डाली और अपने आपको पारखी की नजर से देखने लगी जैसे वह स्वयं ही कोई लड़का हो और अपने लिए पत्नी पसन्द कर रहा

हो । अपने सुडौल शरीर और तीखे नाक नक्श पर वह सहसा रीझने को हुई किन्तु फिर अभी हुई असफलता का स्मरण कर रुक गयी और एक गहरी सिसकी लेकर शीशे की ओर पीठ करके ब्लाउज़ के बटन खोलने लगी ।

शीशा सत्यवादी हरिश्चन्द्र की तरह क्यों होता है ? आज के युग में भी वह यथार्थवादी की तरह जैसा देखता है सब सच सच ही क्यों बता देता है ? वह सोच रही थी । फिर सहसा ही विचार आया कि यदि वह इस समय उसकी तसल्ली के लिए उसके विषय में कुछ झूठ बोल भी जाता तो क्या होता, उसे देखने आने वाले लड़कों पर तो इसका कोई प्रभाव पड ही नहीं सकता था ।

आज उसे छठी बार नापसन्द कर दिया गया था । रंग के काले–पन के लिए वह तो उत्तरदायी नहीं है । उसे इसकी सज़ा क्यों दी जाती है ? अपने कालेपन को दूर करने, कम करने या छिपाने के वह कितने ही उपाय करती है किन्तु विज्ञान के इस युग में भी जब इसे दूर करने का कोई सही उपाय नहीं निकल सका है तो उसका क्या दोष है ? मीना मे और कोई दोष नहीं है । वह बी. ए. तक पढ़ी है, सितार बजाना जानती है, गा भी लेती है, नृत्य का अभ्यास भी है, सीना काढ़ना सब कुछ आता है, एक अच्छी गृहिणी बनने के लिए जिन गुणों का होना आवश्यक है वह सब उसमें हैं । उसका रंग यदि काला है तो इसमें उसका वश तो नहीं है । फिर वह क्यों उत्तरदायी ठहराई जाये ?

इस बार उसे देखने आने वाला युवक सोमेश उसे रह रह कर याद आ रहा था । भरा हुआ गेहुँवा चेहरा जिस पर शेव के कारण नीलापन दिखाई देता था । पतली पतली मूछें, घुँघराले बाल, सभी कुछ आकर्षक था, उसे पसन्द था । लेकिन उसके पसन्द होने से क्या होता है ? जब सोमेश उसे पसन्द कर लेता तभी तो उसकी पसन्द का कुछ मूल्य हो सकता था । जब उसकी उम्र इतनी हो गयी थी कि वह गुड़िया–गुड्डे से ध्यान हटाकर अपने लिए किसी गुड्डे के बारे में अनुमान लगा सके, कुछ

कल्पना कर सके तभी से उसने अपने मन में एक आकृति बना ली थी लेकिन अब, जैसे-जैसे उसे देखने आने वाले उसे अस्वीकृत करके जाने लगे उसकी कल्पना की वह आकृति धूमिल होने लगी और अब वह उस आकृति को बिल्कुल भूल चुकी थी, बल्कि उसे भुला देनी पड़ी थी, आंसुओ से धो देनी पड़ी थी। अब तो यह स्थिति आ गयी थी कि उसकी पसन्द का प्रश्न ही नहीं रह गया था। जो भी उससे विवाह की स्वीकृति दे देता, चाहे वह उसकी कल्पना की आकृति के एकदम विपरीत ही क्यों न होता, उसका विवाह उसी से करके माता पिता एक भार से मुक्त होना चाहते थे। मीना यह समझती थी किन्तु उसके वश की तो कुछ बात ही न थी। इस सोमेश को देखकर न जाने क्यों उसके हृदय में कुछ अजीब से विचार उठे थे। उसे न जाने क्यों आशा हो गयी थी कि वह उसे स्वीकार कर ही लेगा। वह उसकी कल्पना की आकृति के अनुरूप भी था।

इस बार उसे जो आशा हो रही थी उसका एक कारण भी था। यह उसके तथा सोमेश के अतिरिक्त किसी को पता न था। जब सोमेश के घरवालों से बातचीत चल रही थी तभी उसके मन में एक विचार आया था। उसे पांच बार देखकर नापसन्द किया जा चुका था। उसकी अपनी निराशा तथा इसके कारण उसके मन पर हुई प्रतिक्रिया तो अलग रही, इसके कारण उसके माता पिता को जो चिन्ता हो रही थी, उसे दूर करने के अपने कर्त्तव्य से वह अधिक परेशान थी। इसलिए उसने एक दिन पिताजी की अनुपस्थिति में सोमेश का पता उनकी नोट बुक मे से ढूढ निकाला था और उसे एक पत्र लिख दिया था जिसका आशय इस प्रकार था :

'मेरा रंग काला है, केवल इसी कारण पांच बार मुझे अस्वीकृत किया जा चुका है। यदि आप भी उन लोगों की तरह केवल तन के रग को ही प्रधानता देते हों तो कृपया आने का कष्ट न करें क्योंकि तब आपको तो निराशा होगी ही मुझे तथा मेरे परिवार को भी व्यर्थ की परेशानी हो जायगी, अन्यथा स्वागत है। मेरी अथवा मेरे परिवार की

इतनी निराशा के प्रति किसी प्रकार की सहानुभूति की मुझे कोई आवश्यकता नहीं है, और न इसके कारण आपसे मैं किसी ऐसे भावुकतापूर्ण कार्य की अपेक्षा ही रखती हूं जिसके लिए आपका हृदय गवाही न देता हो और जिसके कारण फिर बाद में आप जीवन भर हाथ मलते रहें। इस तरह की स्पष्ट भाषा आपको विचित्र सी, अप्रत्याशित सी, और शायद बुरी भी लग रही होगी किन्तु ऐसी स्थिति में मैं इसके लिए विवश हूँ अतएव क्षमा चाहूंगी।'

इतने स्पष्टीकरण के बाद व्यावहारिक प्रकृति के व्यक्ति से तो किसी प्रकार की आशा की नहीं जा सकती थी किन्तु यदि उसमें तनिक सी भी भावुकता हुई और इस प्रकार तिरस्कृत और निराश लड़की की अतर्वेदना तक पहुँच सका, उसके हृदय में सोया देवत्व यदि जाग सका या मन में कोई ऐसा फरिश्ता पैदा होकर यदि उसकी कल्पना की पत्नी की सुन्दरता भरी मूर्ति के रूप जाल से हटाकर उसे एक काली कलूटी लड़की के मन के सौन्दर्य पर रीझने को विवश कर सका तो शायद मीना को सफलता मिल सके। यों अधिक संभावना निराश होने की ही थी फिर भी न जाने कौन सी बात रह-रह कर मीना के मन में यह विश्वास दिला रही थी कि इस बार वह पसन्द कर ली जायगी। लेकिन जब इस बार भी वही हुआ जो अब तक हुआ था तो उसे बहुत दुःख हुआ। माता पिता को शायद इसकी आशा ही थी इसलिए उन पर विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

मीना साधारण से कपड़े पहन चुकी थी और एक कोने में बैठ गयी थी। फर्श पर गर्द की हल्की सी तह जमी हुई थी। मीना ने अंगुली से उस पर पहले अंग्रेजी का 'एम' अक्षर लिखा और बाद में 'एस' लिखा फिर अपनी दृष्टि फर्श पर लगाये तथा विचारों को किसी सुदूर अजाने प्रदेश में टिकाये आधुनिक चित्रकला की टेकनीक पर कई रेखाकृतियां बना डालीं।

बाहर सहन से काम करती हुई मां ने कुछ खीझे हुए स्वर में

कहा, यह मरा, लड़की देखने का भी क्या रिवाज चल गया है, एक आफत ही हो गई। हमारे जमाने में तो मां बाप ने जो कर दिया सब ठीक था। चाहे मिट्टी के पुतले से पल्ला बांध दिया और आंख मूंद कर विदा करा लाते थे। एक अब का जमाना है, जहां लड़के तो लड़के, लड़की भी लड़का देखना चाहती हैं! कैसे होगा? हे भगवान!" और उन्होंने एक लम्बी सांस ली।

मीना के विचारों में भविष्य एक बड़ा सा प्रश्नवाचक चिह्न बन कर सामने आ खड़ा हुआ था और उसे उसके पार कुछ नहीं दीख पा रहा था। एक्स–रे अथवा कास्मिक किरणों से कई गुनी शक्ति आ जाने पर भी मनुष्य की दृष्टि कभी भी भविष्य की दीवार को भेद कर नहीं जा सकती। मनुष्य की इस निरीहता पर मीना को एकाएक बड़े जोर की हंसी आयी किन्तु इतनी देर से चुप रहने के कारण कण्ठ से स्वर न निकल सका।

"मीना! कहां गयी? अब क्या जनम भर अन्दर ही बैठी रहेगी? कुछ काम भी तो देख।" मां ने बाहर से पुकारा।

वैज्ञानिक प्रकाश की गति को सबसे अधिक तीव्र मानते हैं किन्तु विचारों की गति तो उससे भी कई गुना अधिक होती है। वे एक ही पल में इस लोक से किसी दूसरे जाने अजाने लोक में जा पहुँचते हैं। उनके लिए चन्द्र–लोक अथवा मंगलग्रह की यात्रा असंभव नहीं। ऐसे ही किसी काल्पनिक नक्षत्र की सैर करते हुए मीना के विचारों ने माँ की आवाज नहीं सुनी।

मां ने फिर पुकारा, "क्या सो गयी? फिर कुछ ध्यान करके बोली, "बेटी अब दुख करने से क्या होता है? रूप–रंग तो भगवान का ही दिया है इसमें तेरा क्या दोष है? अब सोच मत कर, बाहर आ जा बेटी।"

मीना की चेतना लौट आयी थी। उसने एक लम्बी सांस ली और उठ कर बाहर की ओर चल दी।

उस पत्र का प्रभाव सोमेश पर हुआ न हो ऐसी बात नहीं किन्तु अन्य कई कारणों से वह मीना के लिए स्वीकृति नहीं दे पाया। विवाह जीवन भर के लिए होता है फिर क्या एक क्षण की भावुकता के लिए वह जीवन भर की साधों और आकांक्षाओं पर पानी फेर दे? विविध विचारों के संधिस्थल पर खडा हुआ सोमेश तब तक कोई निश्चय ही नही कर पाया था फिर मीना को देखने न जाता तो क्या करता?

एक अपरिचित लड़की किसी ऐसे व्यक्ति को पत्र लिखे जो उसे विवाह के लिए देखने आने वाला हो, सोमेश के लिए सचमुच नयी बात थी। अवश्य ही वह लड़की किसी विकट परिस्थिति में होगी, नहीं तो ऐसा साहसपूर्ण कार्य करने की आवश्यकता ही खडी न होती। एक बार सोमेश का मन मीना के साहस की सराहना किये बिना न रह सका। मनुष्य को जीवन में इतना अधिक व्यावहारिक भी नहीं होना चाहिये कि भावना और आदर्शों के लिए गुँजाइश ही न रह जाये, यह सोमेश भी मानता था किन्तु यह तो जीवन का सबसे सूक्ष्म स्थल था जिसमें इन सबसे तटस्थ होकर भली प्रकार विचार करना आवश्यक था।

उसने अपनी पत्नी के विषय में कितनी ही धारणाएं बना रखी थीं। एक अवस्था ऐसी आती है जिसमें हर लड़का और लड़की अपने भावी साथी के विषय में अपनी रुचि के अनुसार कल्पना किया करता है। माल रोड पर घूमने वाले जोड़ों को देखकर सोमेश भी सोचा करता था कि इसी प्रकार वह भी उसके साथ घूमा करेगा, लेकिन काली कुरूप पत्नी को लेकर घूमने में तो लज्जा न लगेगी! मित्र व परिचितों के सामने कैसे जा पायेगा? जीवन भर सभी समय तो भावुकता और आदर्श की गोदी में नही काटा जा सकता कितने ही क्षण ऐसे आयेंगे जब यह भावुकता बोझ लगेगी, एक टीस सी सदैव के लिए उसके मन में रह जायेगी जो समय समय पर उसके हृदय को कचोटती रहेगी। तब वह झुँझला

कर अपना क्रोध मीना पर ही तो उतारेगा।

लेकिन मीना से उसका विवाह अभिशाप न बनकर वरदान भी तो हो सकता है। उसके तन के काले आवरण के नीचे नारियल की गिरी की तरह उज्ज्वल मन भी तो छिपा हो सकता है। किन्तु इसका यह अर्थ यह भी तो नहीं है कि सुन्दर लड़की का हृदय सदैव कलुष ही हो। फिर जब दोनों के हृदयों के विषय में संभावनाएं अभी संदिग्ध ही हैं तो तन की कुरूपता को ही क्यों अपनाया जाए ?

तभी उसके सामने मुरझाई हुई कली की तरह, बुझी हुई चिन्गारी की तरह थकी सी मीना की आकृति आ गयी, जो बरबस मुस्कराने की चेष्टा कर रही थी। जितनी देर वह उसके सामने रही थी, उसकी आंखें धरती को ही घूरती रहीं। सोमेश ने कई बार उसे गौर से देखा था और ऐसा पत्र लिखने का कारण ढूँढ़ने का प्रयत्न किया था। रग-रग में समाई व्यथा को पढने का प्रयत्न किया था और उसके हृदय का एक भाग सहसा पिघलने को को हुआ था किन्तु वह तुरन्त ही संभल गया था। वास्तविक जगत का ध्यान आते ही वह उत्तर बाद में देने की बात कह कर चला आया था—और इस, बाद में उत्तर देने की बात को मीना व मीना के परिवार वाले सब समझते थे। सभी अस्वीकृत करके जाने वाले यही कह कर जाते थे और बाद में जाने वाला उत्तर या तो आता ही नही था या हमेशा नकारात्मक होता था।

सोमेश जिस दिन से मीना को देखकर लौटा था उसके विचार विराम नहीं पा रहे थे। उस काली कुरूप लड़की के कारण उसके हृदय मे एक बवण्डर मचा हुआ था जिसे कोई भी एक बार देख कर सहसा अस्वीकृत कर देता। वह कुर्सी से उठा और खिड़की के सामने जा खडा हुआ। हरी मखमली घास की चादर ओढ़े हुए सपाट लॉन दूर तक फैला हुआ था, काश उसके उलझे हुए विचार भी सुलझकर इस तरह से समतल हो जायें।

"मां", बरामदे में बैठी उसकी बहन उषा ने कहा, "हमारे कालिज

मे एक लड़की है, वही कान्ता, जो कई बार हमारे यहाँ भी आयी है।"

"हाँ, क्या उसकी बात कहीं तय हो गयी ?" मां ने पूछा।

सोमेश के कान भी इस वार्तालाप पर अनायास ही लग गये।

"हाँ, वही तो बता रही हूं। उस बेचारी के तो भाग्य ही फूट गये। पचपन साल के विधुर से तय हुआ है। उसके पहली से दो बच्चे भी है।"

"मां बाप कैसे हैं, जो उन्होंने रिश्ता तय कर लिया ! बेचारी बड़ी अच्छी लड़की है। क्या देखकर ऐसा किया उन्होंने ?" माँ ने पूछा।

"वे भी क्या करते जब और कहीं तय ही नहीं हो रहा था ? उन्होंने तो कितनी ही कोशिश की, लेकिन किसी को लड़की पसन्द ही न आती थी।" और उषा तेजी से मशीन चलाने लगी।

माँ ने कहा, "बहू का रूप रङ्ग तो सभी चाहते हैं।" और रसोईघर की ओर चली गयी।

सोमेश फिर खिड़की से बाहर देखने लगा। हरी मखमली घास की चादर उसी तरह ओढ़े हुए सपाट लॉन वैसे ही दूर तक फैला हुआ था लेकिन उसके विचारों में एक उलझन और बढ़ गयी थी। उसने एक लम्बी सांस ली और सोचने लगा। मीना के साथ भी तो ठीक ऐसा ही हो सकता है। इतनी निराशा के बाद उसके माता पिता के पास और कोई उपाय ही क्या रहेगा ? वह भी एक दिन ऐसे ही किसी साठ बरस के बूढ़े के साथ बांध दी जायगी, जैसे घुने हुए बाँस पर रेशम लपेट दिया जाय। सोमेश के सामने उसकी क्लान्त किन्तु युवा रेशमी देह आ गयी। अट्ठारह उन्नीस की मीना और साठ--पैंसठ का पति ! क्या विडम्बना है ? या फिर एक दिन उसे किसी नदी में छलांग लगानी पड़ेगी अथवा किसी तीव्र विष का सहारा लेना पड़ेगा। सोमेश यह बात ध्यान में आते ही सहसा सिहर उठा।

कुछ लोग ऐसे होते हैं जो एक क्षण के परिचय में ही अपना स्थान बना लेते हैं। कुछ अमिट सी, अमर सी छाप मन पर छोड़

जाते हैं और मन न चाहने पर भी उनके ही बारे में सोचने को विवश होता है । सोमेश भी मीना से हट कर आज कुछ न सोच पा रहा था। [illegible] में फंसा व्यक्ति उससे निकलने की जितनी ही कोशिश करता है वह उसमें और अधिक धंसता जाता है, ठीक यही दशा सोमेश की भी हो रही थी । इतना सोचने के बाद वह जिस निश्चय पर पहुँच पाया था वह उषा के इस समाचार से डगमगा गया था । तो क्या वह मीना के लिए स्वीकृति दे ? किन्तु उसके सपनों का क्या होगा ? उसकी कल्पना के उन महलों का क्या होगा ? आखिर मीना के लिए उसके हृदय में इतना दर्द होने का कारण क्या है ? यह सहानुभूति क्यों ? वह इन प्रश्नों में उलझ कर अपने कमरे से निकल पड़ा ।

मीना की कहानी :

ऐसी परिस्थिति में जिन दो विकल्पों के विषय में सोमेश ने सोचा था ठीक वैसा ही मीना के साथ भी हुआ । मीना के मन का संघर्ष अब चरम सीमा पर पहुँच चुका था । उसके विचारों में अब आगे लड़ने की शक्ति नहीं रही थी । अकेले कमरे के कोने में अपने को छिपा कर वह अपनी वेदना को और अधिक छिपा न पा रही थी । घर की चहार-दीवारी की सीमाओं में उसकी व्यथा बंध न पा रही थी । इन सब से छुटकारा लेने के लिये वह समुद्र तट की ओर गयी थी और उसकी चिरचंचला लहरों में इस सब को समा देना चाहती थी ।

विचारों की लाठी पकड़े हुए मनुष्य मीलों का चक्कर अनायास ही लगा लेता है । उसे न तो समय का ध्यान रहता है और न थकन का । और फिर इन विचारों की सृष्टि भी तो रक्तबीज की तरह होती है । श्रृङ्खला की एक कड़ी टूटती है तो सौ नयी गुत्थियों को जन्म दे जाती है । इन गुत्थियों की भीड़ में से उचक कर जब मीना ने दृष्टि उठायी तो सामने दहाड़ें मारता हुआ समुद्र लहरा रहा था । उसे पता तक न चला था कि कब वह वहां तक आ गयी । उसने विरक्ति भरी दृष्टि समुद्र पर डाली । यह अथाह समुद्र ही जब सब परिस्थितियों में

अपनी गंभीरता स्थिर नहीं रख पाता तो मनुष्य तूफानों में भी विचलित न होने की शक्ति कहां से लाये !

कल उसे एक चोट और लगी थी । उसकी वेदना का तापमान एक डिगरी और बढ़ गया था । सातवीं बार दुहरायी गयी थी, जिसे वह सुनने को आदी हो गयी थी । अस्वीकृति की व्यथा तो अब उसके लिए साधारण बात हो गयी थी और इसीलिए वह उसके हृदय पर और अधिक बोझ बन कर नहीं आ पायी थी । किन्तु हताश माता पिता का दुख कल बांध तोड़ कर बह निकला था । वर्षों से अन्तर के प्रकोष्ठ में संजोयी वेदना ज्वालामुखी की तरह बरस पड़ी थी और वे भी ऐसे ही एक प्रस्ताव पर विचार करने को विवश हो गये थे, जिसके विषय मे सोमेश ने सोचा था । किन्तु इसके लिए उनकी आत्मा तैयार न थी ।

स्वयं मीना की अपनी कोई अभिलाषा कभी थी भी, उसे याद नही, किन्तु वह किसी के लिए बोझ बने, यह भी नहीं सह सकती थी । अरस्तु, प्लेटो और सुकरात आदि दार्शनिकों की जीवन विषयक परिभाषाए न तो उसे आती थीं और न वह जानना ही चाहती थी । वह तो जीवन का अस्तित्व तभी तक आवश्यक समझती थी, जब तक वह किसी पर बोझ बन कर न रहे । और इसीलिए वह सबसे छुटकारा लेने चली थी ।

पिछले कई वर्षों से सदैव अपने विवाह के प्रश्न पर ही सोचते रहने के कारण वह आज इस विषय से ऊब गयी थी । आज उस वातावरण से अलग होने पर वह कुछ और ही सोचना चाहती थी । किन्तु बहुत चाहने पर भी उसके विचार कहीं और स्थान ही नही पाते थे । सड़क पर जाने वाली हर सुन्दर लड़की से आज उसे ईर्ष्या हो रही थी । हर हंसने वाला उसे बुरा लग रहा था । वह जीवन से दूर, इस ससार से दूर जाना जाना चाहती थी ।

अपने में समा जाने का निमन्त्रण देती हुई समुद्र की उत्ताल लहरों ने उसके निश्चय को और अधिक बल दिया था । केवल एक छलाग और सारे दुखों, सारी समस्याओं, सारी चिन्ताओं का अन्त ।

लेकिन न जाने कौन सी शक्ति ने उसे ऐसा करने से रोक दिया था और वह अब वापस हो गयी थी।

लेकिन उसके विचारों को नया बल, नयी स्फूर्ति और नयी राह मिल चुकी थी। उसकी चिन्ताओं को हल मिल गया था और उसकी समस्याओं का निदान हो गया था।

आत्महत्या क्यों की जाये? जीवन के संघर्ष से भागना तो वह नही चाहती थी किन्तु परिस्थिति की विवशताओं ने उसे यह सोचने को बाध्य कर दिया था। किन्तु इससे पहले ही उसकी आत्मा का एक सोया स्वर जाग उठा था और उसके चिन्तन को एक पथ मिल गया था। क्या विवाह ही जीवन का चरम लक्ष्य है? क्या विवाह जीवन की नितान्त आवश्यकता है? क्या इसके बिना रहने की समाज आज्ञा नही देता? समाज की बात ध्यान आने पर वह तनिक देर को चौंकी, किन्तु अपने मन के अडिग विश्वास के आगे समाज का बेबुनियाद विरोध सहा भी तो जा सकता है। क्या हर लड़की का जन्म इसीलिए माना जाना चाहिये कि उसे बड़ा होकर एक पुरुष के साथ बंधना है, क्या उसके लिए केवल यही एक मार्ग है, निर्देश है। अन्य कोई मंजिल नही, लक्ष्य नहीं। जहां पुरुष संसार में कितने ही कार्य कर सकता है, वह भी तो कर सकती है। नहीं, वह विवाह नहीं करेगी, और फिर भी इसी समाज में जिन्दा रह कर दिखायेगी। वह किसी भी पुरुष का आश्रय नही ढूंढेगी, उसका आश्रय लिया ही क्यों जाये जो, जो मन को नहीं तन को प्रमुखता देते है!

उसने सिर उठाकर समुद्र से आसमान की ओर उछलती हुई लहरों की ओर देखा था। उसे लगा कि वे अब उछल उछल कर उसके विचार की प्रशंसा कर रहीं थी और उसके इस निश्चय पर उसे बधाई दे रहीं थी। और फिर कई वर्ष बाद वह सहसा मुस्करा उठी थी।

भटके हुए राही को जब कठिनाइयों के बाद राह मिल जाये तो अपूर्व प्रसन्नता होती ही है। ऐसी ही प्रसन्नता लिये मीना घर की ओर

वापस चल दी था । अब उसे किसी से ईर्ष्या नहीं हो रही था, कोइ उसे बुरा नहीं लग रहा था और किसी के हँसने से उसे पीड़ा नहीं हो रही थी ।

लेकिन आजीवन अविवाहित रह कर वह करेगी क्या ? इतना लम्बा पहाड़ सा जीवन किस तरह काटेगी ? माता पिता पर भार बन कर वह रहना नहीं चाहती, फिर किस प्रकार और कहां रह कर वह जीवन पूरा करेगी ? क्या इस प्रकार उसका रहना केवल जीवन पूरा करना ही होगा ? नहीं, उसे इसका मार्ग भी ढूंढना होगा, नहीं तो उसकी समस्या का हल अधूरा ही रह जायेगा । और सहसा ही उसके पाँवों की दृढ़ता कम हो गयी । उसके चिन्तन में एक क्षण के लिए गतिरोध छा गया ।

वह अपने घर के पास आ गयी थी । अपने हल के अधूरेपन से वह सहसा फिर वापस जाने को हुई । तभी किसी के मकान के दरवाजे पर लगी 'नेम प्लेट' पर नाम के बाद बी. ए. लिखा हुआ दिखाई दिया । वह भी तो बी. ए. है । उस की यह शिक्षा क्या कुछ काम नहीं आयेगी ? इसके सहारे तो वह कुछ भी कर सकती है, फिर न वह किसी पर भार बनेगी और न फिर उसका जीवन अकेला और भर लगेगा ।

"जीजी," पड़ौस की किसी लड़की ने कहा, "तुम कहां चली गयी थी ? सब लोग तुम्हें ढूंढ रहे हैं ? चलो, तुम्हारे घर कोई आया हुआ है ।"

कौन आया होगा, मीना सोचने लगी । कोई भी हो, अब घर तो वह जा ही रहेगी । किसी देखने आनेवाले के सामने अब वह नहीं जायेगी । अब उसे इसकी आवश्यकता ही नहीं रह गयी है, कि लोग उसे देखें जांचे, परखें और फिर नापसन्द करके अपनी राह लें । अब प्रस्तावों पर विचार करने की न तो उसे आवश्यकता ही है और न अवकाश ही ।

आँगन में पहुँचते ही माँ सामने पड़ी । देखते ही बोलीं, "लो

आ गयी, मीना भी । बड़ी देर कर दी री तूने ? देख, बाहर बठक में कौन वैठा है ?"

मीना परदा उठा कर बैठक में प्रविष्ट हुई तो सन्न रह गयी। सामने ही सोमेश बैठा था। "सहसा उसके होठों से अनजाने ही निकल पड़ा," तुम ? आप।"

"हां," उसे सोमेश की धीमी आवाज सुनाई दी, "मुझे रिश्ता मंजूर है ? मैं यह सूचना देने आया था।"

मीना ने सिर उठा कर उसकी ओर देखा। एकटक देखने के बाद उसके अधरों से अस्फुट स्वर निकला, "लेकिन "

किन्तु वह बात पूरी न कर सकी, और लाज से लाल होकर सहसा अन्दर भाग गयी, ।

सोमेश कुछ देर उसे देखता रहा। फिर मुस्करा दिया।

उस दिन फरिश्तों के परिवार में एक की वृद्धि और हो गयी थी।

अर्थशास्त्र और राजनीति, दो विषयों में एम. ए.
ने के बाद भी जब कैलाश की अफसर के पद पर
क्ति न हो सकी तब वह हार कर सी. डी. ए.
अपर डिवीजन क्लर्क हो गया। विद्यार्थी जीवन
ही वह आई. सी. एस. अफसर बनने के स्वप्न,
चात्य ढङ्ग के परिवार तथा रहन सहन की
ांक्षाएं अपने हृदय में संजोये हुए था। और इसी
ण उसने दूसरा एम. ए. किया था क्योंकि
ो-ढाई सौ रुपये की नौकरी मिलती नहीं थी और
की वह करना नहीं चाहता था। वह तो एक-
एम. ए. और भी कर लेता किन्तु असमय में पिता
का सहारा टूट जाने से परिवार का बोझ उस पर आ
और सब आकांक्षाओं और सपनों को विवशतः

तलांजली दे कर उसे क्लर्क बनाना पड़ा।

उसके एक सौ सैंतीस रुपये के वेतन में साढ़े तीन भागीदार थे। दो वह पति-पत्नी, एक उसकी मां और एक उसका तीन वर्षीय पुत्र राकेश। वेतन का एक भाग परिवार को पाश्चात्य ढङ्ग मे बदलने मे भी व्यय होता था। अधपढ़ी पत्नी, विमला को उल्टे पल्ले की साडी, अधखुली ब्लाउज, लिपस्टिक, रूज़ आदि का प्रयोग करना पड़ता और राकेश को डैडी, मम्मी, ग्रांडमा आदि सम्बोधनों को सीखना पड़ता। मां को भी ब्रेकफास्ट, लंच, डिनर, सपर आदि तैयार करने पड़ते। इस प्रकार सारा घर पाश्चात्य कल्चर और ऐटीकेट का शिक्षणस्थल बना रहता था। कैलाश यह देखकर आत्मिक सुख का अनुभव करता था।

कैलाश का सर्वाधिक ध्यान राकेश की ओर था। वह अपने सपनों को तो पूरा नहीं कर पाया था। इसका कारण वह अपने प्रारंभिक संस्कारों को मानता था, इसीलिए वह राकेश को अभी से उसी के अनुसार तैयार करना चाहता था। और इसी कारण वह उसके अनुकूल वातावरण बनाने का प्रयत्न करता था। उसके विचार में बच्चे की प्रारंभिक शिक्षा का महत्त्व सर्वाधिक था। उसी के आधार पर बच्चे के भविष्य की पृष्ठभूमि का निर्माण होता है। इसीलिए उसने उसे चार वर्ष का होने पर ही कन्वैण्ट स्कूल में भरती करा दिया था। जहां वह किंडरगार्टन की सीढ़ी चढ़ कर अब सेकिन्ड स्टेण्डर्ड तक आ पाया था। अब उसे 'ट्विंकिल ट्विंकिल लिटिल स्टार' और 'टिक-टिक दि क्लोक सेज' वाली कितनी ही कविताएं कण्ठस्थ थीं। अब वह धड़ल्ले से गुड मार्निंग, चेरियो, टाटा आदि करने लगा था। उसके अंग्रेजी के एक एक शब्द पर कैलाश का खून एक छटांक बढ़ जाता था, उसकी छाती गर्व से फूल जाती थी। अपने साथी क्लर्कों के सामने राकेश को बुला कर अंग्रेजी कविताएं सुनवाने में उसे अतीव आनन्द मिलता था और तब वह अपने को उनसे कहीं अधिक ऊंचा अनुभव करने लगता था।

किन्तु राकेश की ऐसी पढ़ाई में उसे व्यय बहुत अधिक करना

पड़ रहा था। वेतन का एक बड़ा भाग उसे हर माह स्कूल में देना पड़ता था। राकेश की अप–टु–डेट–ड्रैस, बढ़िया स्टेशनरी, टिफिन आदि का व्यय अलग से होता था। उसके ऐसे व्यय को देख कर मां कहा करती थी, इस लड़के का तो दिमाग़ ही खराब हो गया है। हमारे जमाने में तो एक पैसे के कायदे से पढ़ाई शुरू की जाती थी और ज्यादा से ज्यादा चवन्नी महीना फीस जाती थी। अब यह है कि बीसियों रुपये हर महीने खर्च कर देता है। ऐसी भी क्या पढ़ाई ? उधर कैलाश की अर्धआधुनिक पत्नी छोटे से वेतन में से हर महीने इतनी बड़ी रकम निकाल देने पर अर्थाभाव से परेशान रहती थी और दिन रात कैलाश को यह खर्च कम करने को कहा करती थी। किन्तु कैलाश उन्हें मूर्ख कह कर टाल देता था और उसके चेहरे पर कभी इसके कारण चिन्ता की रेखा तक नहीं दिखायी देती थी। वह तो बस, यही कहा करता था, 'मुझे अपने राकेश को ऊंची से ऊंची शिक्षा दिलानी है चाहे इसके लिए मुझे अपना सब कुछ ही लुटा देना पड़े। कम से कम बड़ा हो कर वह अच्छा अफ़सर तो बन सकेगा।'

बिमला आधुनिक पत्नी थी नहीं, बनायी जा रही थी इसका कारण उसका स्वभाव बहुत अच्छा था। उसकी सहन शक्ति पर मां को भी अचम्भा हुआ करता था। वह जानती थी कि यह सब कैलाश का पागलपन ही है पर उसका अधिक प्रतिवाद नहीं करती थी। लेकिन फिर भी जब पारिवारिक व्यय के लिए सदैव वेतन कम पड़ने लगा तो वह अक्सर विचलित हो जाया करती थी। इसी कारण एक–आध बार दम्पत्ति मे झगड़ा भी हो गया। कुछ समय के लिए बोलचाल भी बन्द हो गयी। परन्तु कैलाश ने न जाने कहां से लाकर उसके हाथ पर पचास रुपये रख दिये और बिमला ने इसी तरह कैलाश की खुशी में अपनी खुशी समझ पूर्ववत् व्यवहार शुरू कर दिया। उसके बाद भी अक्सर ऐसे समय मे न जाने कहां से कैलाश उसे रुपये ला देता था। एक आध बार उसने उनका स्रोत जानने का प्रयत्न भी किया किन्तु कैलाश ने कुछ भी स्पष्ट

नहीं किया।

खाली समय में कैलाश स्वयं भी राकेश को पढ़ाया करता था। एक दिन राकेश न पढ़ने की जिद करने लगा तो उसने समझाया, "राकेश, तुम्हें खूब पढ़ना चाहिये। खूब पढने से जानते हो क्या होगा?"

राकेश ने उत्सुक होकर गर्दन हिलायी।

"बड़े आदमी बनोगे। फिर तुम्हें खूब पैसा मिलेगा। दुनियां भर की चीजें होंगी, तुम्हारे पास।"

"जैसे सामने वाले सेठ जी के पास हैं, पापा?"

"हां, उससे भी ज्यादा। तुम तो समझदार बच्चे हो। चलो, पढो।" और राकेश सचमुच तल्लीन होकर पढ़ने लगा।

कैलाश के मकान के सामने एक बड़ी ऊंची हवेली थी। उस भव्य हवेली में सेठ धनीराम रहा करते थे। सेठ जी के यहाँ लेन-देन का व्यापार था। मण्डी में आढ़त की दुकान थी और कितने ही मकान थे जिनका किराया आता था। पढ़ाई के नाम पर सेठ जी को काला अक्षर भैंस बराबर था, किन्तु धन की तो जैसे उन पर वर्षा होती थी।

अर्थाभाव के कारण जब कैलाश ने परिवार में क्लेशों का सूत्रपात देखा तो उसे एक यही रास्ता सूझा था कि सेठ जी से उधार लिया जाये और तब से ऐसे अनेक अवसरों पर जो रुपये लाकर वह विमला को दिया करता था उन सब के स्रोत यही सेठ जी थे। स्थायी सम्पत्ति के रूप मे कैलाश के पास बस, एक पैतृक मकान था जिसमें वह रहता था। सेठ जी उसी को दृष्टि में रख कर उसे निःसंकोच उधार दिये जाते थे और इसी तरह एक दिन यह राशि सैंकड़ों से बढ़ कर हजारों तक पहुँच गयी और उधर राकेश कन्वेण्ट की पढाई भी पूरी नहीं कर पाया था।

एक दिन कैलाश के चेहरे पर भी चिन्ता की रेखाएं अव्यक्त न रह सकीं तो विमला सहसा ही दहल गयी और डर कर पूछा, "क्यों, क्या बात है?"

"कल राकेश ने बताया था कि कन्वेण्ट के सभी बच्चे दक्षिण भारत

के टूर पर जा रहे हैं, इसलिए परसों तक १०० रुपये जमा करने होंगे। इसके अलावा जाड़ों के नये कपड़े भी बनवा कर देने होंगे। मैं समझता हूं कि इसके लिए भी कम से कम पचास रुपये चाहिये।"

"यह तो एकाएक डेढ़ सौ का खर्चा आ पड़ा। फिर क्या सोचा ?" विमला बोली।

कैलाश इसका उत्तर नहीं देना चाहता था पर करता ही क्या। अब तक जिस स्रोत को उसने छिपा रखा था उसके बारे में बिना बताये आगे कुछ न हो सकता था इसलिए उसने कहा, "जानती हो, मैं तुम्हें वेतन के अलावा जो रुपये लाकर दिया करता था, वह कहां से आते थे ?"

विमला ने नकारात्मक गर्दन हिलाई।

"सेठ धनीराम से उधार लेता था। लेकिन अब उन्होंने बिना मकान अपने नाम लिखाये देने से इन्कार कर दिया। समझ में नहीं आता क्या करूं ?"

और समय होता तो विमला उधार के नाम पर कलह करने को तैयार हो जाती लेकिन इस समय चौंक कर ही रह गयी, फिर भी बोली, "तो ऐसा कितना कर्ज लिया, आपने ?"

लेकिन कैलाश ने इसका उत्तर नहीं दिया और अपनी ही बात आगे चलाई, "लेकिन यह पुश्तैनी मकान किस तरह छोड़ा जा सकता है और फिर अम्मा तो इसके लिए कभी तैयार न होंगी।"

"हां, जब तक वह हैं, हमें ऐसा कोई काम नहीं करना चाहिये। वह तो यह कभी न होने देंगी।"

"पर अब इसके अलावा और रास्ता ही क्या है ? अब तक के किये कराये पर पानी किस तरह फेर दूँ ? अच्छी तरह पढ़ लिख जायेगा, तो उसकी जिन्दगी बन जायेगी।"

तभी राकेश ने पुकारा, "मम्मी, मुझे निकर पहना दो, मैं नहा चुका।" और पति पर एक असहाय दृष्टि डालकर विमला चली गयी।

जाते जाते वह रुककर बोला, "लेकिन मा से कैसे कहगे ?

हां, मां से वह किस प्रकार यह बात कहे, यह कैलाश के लिए समस्या ही थी। उसने विमला की ओर देखा, वह जा चुकी थी और स्वय चिन्ताओं के परिवेष्ठन में छिप गया।

राकेश के पढ़ने का समय आया। वह पापा के पास आकर कुछ देर खड़ा रहा किन्तु जब उसने उन्हें पढ़ाने के लिए तत्पर नहीं पाया तो उनकी ओर अचम्भे से देखता हुआ लौट गया और आकर विमला से बोला, "मम्मी, क्या बात है, आज पापा मुझे पढाते क्यों नहीं ?"

कुछ त्रस्त से स्वर में विमला ने उत्तर दिया, "आज वह बहुत परेशान है।"

"क्यो, क्या हुआ पापा को ?"

विवशता जब बांध तोड़कर कैलाश को डुबाने लगी तो उसने सारी संभावनाओं को पीछे धकेल कर सेठ जी के अनुबन्ध–पत्र पर हस्ताक्षर कर दिये और उसे लेकर विमला के पास पहुँचा किन्तु मां–बेटे की बातों का विषय स्वयं को ही जानकर, सुनने के लिए चौखट पर ही खड़ा हो गया।

विमला राकेश को बता रही थी, "सामने वाले सेठ जी ने पापा को रुपये नहीं दिये, इसलिए वह सोच में हैं।"

"लेकिन पापा को रुपये की क्या कमी है ?"

"कमी तो है, ही। कल तुम्हारे स्कूल में जो देने हैं।"

"लेकिन तुम तो कहती थीं कि पापा बहुत ज्यादा पढ़े हैं और पापा ने बताया था कि जो जितना पढ़ता है उसे उतना ही पैसा मिलता है। तभी तो पापा मुझसे हमेशा पढ़ने को कहा करते हैं। तो क्या मम्मी, सामने वाले सेठ जी पापा से भी ज्यादा पढ़े हुए हैं ?"

विमला उसका मुँह देखती रह गयी।

उधर चौखट पर चुपचाप खड़ा कैलाश निरक्षर सेठ के बारे में किया गया उसका यह प्रश्न सुनकर निष्प्रभ हो गया। सहसा उसे ऐसा

लगा कि जैसे किसी ने एक साथ सैंकड़ो भाले चुभो दिये हों । थोड़ी देर के लिए उसकी चेतना पर मूर्च्छना आ गयी । वह अव्यक्त सी कसक में तिलमिला उठा । उसने विक्षोभ और विद्रोह भरी एक दृष्टि सामने वाली ऊंची हवेली पर डाली और फिर दीवार पर टंगे शीशे में जड़े अपने ढेर सारे उपाधि–पत्रों पर; और झुँझला कर उस अनुबन्ध को फाड़ दिया ।

सामने खड़ी ऊंची भव्य हवेली समाज के इस विद्रूप पर मुस्करा रही थी ।

अस्थि पंजर की आत्मा

नेपुल्स के म्यूजियम में पाम्पेई की खुदाई से प्राप्त कितनी ही वस्तुएं रखी हुई हैं। पर्वतीय छाया में बसा हुआ इटली का यह प्राचीन नगर अब से उन्नीस सौ वर्ष पूर्व जितना सुन्दर, आकर्षक और रंगीन रहा था उसका प्रमाण आज भी ध्वंसावशेषों से मिल जाता है। पाम्पेई को वह स्थान प्राप्त था जो भारत में काश्मीर और योरोप में स्विट्ज़रलैण्ड को है। गर्मी के दिनों में सुन्दर–सुखद–आवास के लिए प्रत्येक इटलीवासी पोम्पेई के लिए मचल उठता था। प्रकृति की गोद में किल्लोल करता हुआ यह नगर अपने वैभव पर फूला नहीं समाता था। लेकिन जहां दक्षिण में नेपुल्स की खाड़ी की जलराशि उसके पांव पखारती रहती थी, उससे पांच मील दूर ईर्ष्यालु ज्वालामुखी

विसूवियस उसके चमत्पूर्ण आमोद को देख देख कर अन्दर ही अन्दर सुलगता रहता था और इसीलिए उसने निर्दोष पाम्पेई को अ मसात करने का नृशंस षड़यंत्र रच डाला था। जबकि उसे बसे हुए केवल ६०० ही वर्ष हुए थे, विसूवियस ने १४ अगस्त, सन् ७९ की एक रंगीन और मदहोश सुबह को अपना आग्नेय नेत्र खोल दिया और उसके प्रचण्ड प्रकोप के नीचे अपनी सजीव सुन्दरता लिए हुए पाम्पेई सदा सदा के लिए दफना दिया गया। उसी स्थल की खुदाई से अनेक वस्तुएं प्राप्त हुई हैं जो नेपुल्स के अजायबघर में रखी है।

प्राप्त वस्तुओं में बड़ी बड़ी विचित्र भी हैं, जिसके विषय में तरह तरह के अनुमान लगाये जा सकते हैं। चूल्हे पर रखी हुई ८१ अधजली रोटियाँ, जो शायद होटल के ग्राहकों के लिए तैयार हो रही होंगी, डाइनिंग टेबुल पर बैठे हुए लोगों के अस्थिपंजर, जो शायद किसी भोज मे सम्मिलित थे, एक भागते हुए मनुष्य का अस्थिपंजर, जिसके हाथ में सोने के सिक्के थे, शायद उस संक्रांति काल में भी लूटमार में संलग्न रहा होगा आदि ऐसी कतिपय वस्तुएं उस अजायबघर में देखी जा सकती हैं। किन्तु उनमें ही है एक कुत्ते का अस्थिपंजर जिसके मुंह में सम्पूर्ण रोटी थी। एक जानवर ऐसे संकट के समय रोटी की बात कभी नहीं सोच सकता। जानवर आनेवाली विपत्ति को मनुष्य की अपेक्षा पहले ही जान लेते है। और ऐसे में वह आसानी से तैर कर वहाँ से बहुत पहले ही भाग सकता था। फिर कौन सा ऐसा आकर्षण था कि वह वहीं आग में जलने को रह गया। रोटी वह आकर्षण नहीं हो सकती, हाँ उसकी मृत्यु का कारण अवश्य हो सकती है। लेकिन ऐसे समय में वह किसके लिए रोटी लेने गया था। इन सब का स्पष्टीकरण अब तक नहीं किया जा सका है।

लेकिन मैं कहानी को इस तरह लेता हूँ :

पाम्पेई के वैभवशाली वातावरण से दूर एक गरीब और अकेला लड़का रहा करता था, जिसका नाम था, गेयस। गेयस के माता पिता कभी थे भी इसकी उसे याद नहीं थी। उसने तो हमेशा से अपने

को अकेला ही पाया था .

गेयस के लिए पाम्पेई की सारी रंगीनी बेकार थी, काली स्याह थी। क्योंकि वह जन्मांध था। उसका न तो कोई घर था और न कोई ठिकाना। नगर के बाहरी द्वार की छाया में वह रात बिताया करता था और उसका सारा दिन नगर की सड़कों पर घूमते हुए बीत जाता था। बस, यही उसकी दिनचर्या थी और यही उसका व्यापार। न उसे चादी बिखराते और संगीत सुनाते झरनों से मतलब था और न उसे सुगन्ध फैलाते रमणीक उद्यानों से प्रयोजन।

लेकिन वह बिल्कुल अकेला भी न था। उसका एक साथी था, जो हमेशा छाया की तरह उसके साथ रहा करता था। और वह था स्पेनियल जाति का एक कुत्ता; जिसका नाम गेयस ने पिनोकी रख दिया था।

जैसे कि गेयस के बारे में किसी को कुछ पता न था कि वह कहा से आया है, किसका लड़का है, कितना बड़ा है, उसी प्रकार पिनोकी के बारे में भी किसी को कुछ न मालूम था। बस, इतना सब कहते थे कि जब से गेयस पाम्पेई में दिखाई देता है तभी से पिनोकी उसके साथ है। बिना पिनोकी के न कभी गेयस दिखाई देता था और कुछ समय को छोड़ कर, अन्य समय न बिना गेयस के पिनोकी को देखा जाता था। अन्धे और अकेले गेयस की दोनों कमियों को पिनोकी पूरा किये हुए था पिनोकी न केवल उसका साथी था बल्कि वही उसका पिता था, माँ था और अभिभावक था। गेयस को कभी पता तक न चलता था कि किस प्रकार और कहां से वह उसकी सभी सुविधाओं के आयोजन इकट्ठे कर दिया करता था, और सब उचित समय पर। गेयस न तो चिन्ता करने लायक ही था और न चिन्ता करके कुछ कर ही सकता था किन्तु पिनोकी एक जानवर होने पर भी सब कर लेता था।

जैसा कि मैंने पहले कहा कि पिनोकी कुछ अवसरों पर ही गेयस से अलग हुआ करता था,, वह अवसर दिन में तीन हुआ करते थे। प्रारम्भ

से ही उसका यह नियम बन गया था, पता नहीं यह कोई आपसी समझौता था अथवा हृदय के किसी कोमल प्रान्त की भावना के कारण था।

सुबह सुबह ही, जब गेयस सपनों के रंगीन संसार में सोया हुआ होता था पिनोकी उठता और शहर की ओर चल देता था। पर जैसे ही गेयस की नींद खुलती, और उसकी अन्धी आंखों के आगे सपनों की रंगीनी के स्थान पर हमेशा जैसा अन्धेरा छा जाता, तभी उसे पिनोकी के दुम पटकने और कान फड़फड़ाने की आवाज सुनायी देती। वह जम्हाई ले कर नाश्ते के लिए तैयार होता और पिनोकी उसके हाथ पर रोटी अथवा कोई फल रख देता था।

इसी तरह दोपहर को वे लोग चाहे जहाँ भी होते, गेयस कुत्तों की तरह सोने की तैयारी करता और पिनोकी मनुष्यों की तरह खाने का प्रबन्ध। कुछ ही समय बाद वह किसी दुकान से मांग कर, छीन कर या किसी अन्य तरह से कुछ रोटी मांस का टुकडा या अन्य जो भी मिल पाता, ले आता और इस तरह उनका दोपहर का भोजन भी हो जाता था।

फिर आती रात। पिनोकी ने आसमान पर अन्धेरा होता देखा कि उसने गेयस के पांव चाटने शुरू किये यह गेयस के लिये बाहरी द्वार पर चलने की सूचना होती थी। गेयस फिर सोने की तैयारी करता और पिनोकी उसके भोजन की चिन्ता। और नतीजा होता कि रात का भोजन भी उन्हे प्राप्त हो ही जाता था।

इस प्रकार उन्हें कुछ न कुछ खाने को हमेशा मिल जाता था, वह चाहे सूखा हो, बासी हो अथवा ताजा। थोड़ा हो या काफी। गेयस न तो यह जानने की कोशिश करता कि यह सब आता कहां से है और न पिनोकी बताने की जरूरत समझता था।

दोनों का जीवन इसी प्रकार चल रहा था। गेयस को अपने अन्धे होने का दुःख कभी न होता और न वह कभी अन्य लड़कों की

तरह आंखमिचौनी, चोर–सिपाही या ऐसे ही किसी अन्य खेल के बारे मे सोचता, नाटक या पिकनिक के मनोरंजन को उसका मन करता । तरह तरह की आवाजें और विभिन्न सुगन्धों से ही वह अपना मन बहला लेता था । उसके अलावा न उसे इच्छा होती और न उसको आवश्यकता ही ।

उन लोगों ने विसूवियस को कभी देखा तो न था किन्तु उसके बारे में चर्चाएं भी कम न सुनी थीं । ज्वालामुखी के निकट होने के कारण पाम्पेई में भूकम्प तथा ज्वालामुखी के विस्फोटों के बारे में अक्सर बातचीत हुआ करती थीं । उन्हें सुनकर गेयस को भी कुछ जानकारी हो गयी थी, किन्तु शहर के अन्य लोगों की तरह वह भी कभी न सोच सकता था कि इतनी शीघ्र ही पाम्पेई पर ऐसी विपत्ति आने वाली है कि जो उसे सदा सदा के लिए समाप्त कर जायेगी ।

उस रात उसने जो सपने देखे वह हमेशा से कहीं अधिक रंगीन थे । सारे पाम्पेई के वैभव से भी अधिक वैभवपूर्ण और शहर के किसी भी लड़के की अभिलाषाओं से भी अधिक परिपूर्ण । यदि उसका बस चलता तो वह कभी सुबह ही न होने देता और सारी उम्र उन्हीं सपनो में बिता देता । किन्तु सुबह तो होनी थी और वह भी ऐसी कि जो प्राय: सभी के लिए आखिरी होती ।

सुबह हुई और मन न चाहने पर भी गेयस को उठना पड़ा । शहर में कहीं कोई परिवर्त्तन न था । सब कार्य वैसे ही चल रहे थे । नानबाई ने हमेशा की तरह चूल्हा सुलगाया था और रोटी तैयार करने लगी थी । दुकानदारों ने हमेशा की तरह अपने सामान सजाये थे, खोमचेवाले हमेशा की तरह घरों से निकले थे और अन्य सभी निवासी भी अपने अपने दैनिक कार्यों में हमेशा की तरह लग गये थे । कहीं कोई अन्तर नहीं, कहीं किसी प्रकार की आतंक की प्रतिच्छाया नहीं । बस, यदि कुछ अन्तर था तो यह, कि गेयस आज कुछ देर से उठा था ।

लेकिन गेयस आज उठा न था बल्कि जबरदस्ती उठाया गया था ।

पिनोकी ने उसे हिलाडुला कर जगाया किन्तु वह न उठ सका और करवट बदल कर फिर सो गया था तब पिनोकी ने न चाहते हुए उसे हल्के से काट लिया और तब विवश होकर उसे उठना पड़ा था। नींद उसकी आँखों में भरी हुई थी और उसे कुछ पता न चल पा रहा था। बस, उसने अनुभव किया कि पता नहीं हवा में क्या घुल गया हैं कि साँस लेने में कठिनाई अनुभव हो रही थी। सारे वातावरण में अजीब सी गर्मी भरी हुई लग रही थी जैसे कि शरीर में गर्म गर्म सुइयां चुभ रही हो और न जाने कैसी गन्ध फैली हुई थी कि नाक में जलन सी हो रही थी फलतः आँखों में पानी बहने लगा था।

लेकिन इन सब का कारण क्या है, गेयस की समझ में नही आया। उधर पिनोकी उसकी पतलून का पाहुँचा अपने मुंह में दबाये उसे जबरदस्ती खींचने में लगा हुआ था। पता नहीं वह क्या चाहता है, यह भी गेयस की समझ में नहीं आ रहा था। तभी उसे अजीब सी आवाजें सुनायी दीं। उसने ध्यान दिया, यह आप पास बंधे जानवरों की थीं जो किसी भयानक आशंका के कारण चिल्ला रहे थे। कुछ न कुछ असाधारण बात अवश्य है, वह केवल इतना समझ सका।

तभी उसके नीचे की धरती एकाएक ऊपर को उठ गयी, और उसे सब कुछ हिलता हुआ सा जान पड़ा। क्या यह भूकम्प है, उसने सोचा। पिनोकी ने उसे फिर एक झटका दिया और वह एक ओर को लुढक गया।

निकट ही एक फुव्वारा था। अन्य समय तो उसमें से शुद्ध शीतल जल की फुहार निकला करती थी किन्तु गेयस ने अनुभव किया, आज उसका जल खौलता हुआ लग रहा है। पिनोकी ने उसे फिर खीचा। तभी उसे बहुत सी आवाजें जो चीख पुकार कही जा सकती थी, सुनायी दीं। इस बार ये आदमियों की थीं। इसके साथ ही लोगों के भागने का शब्द भी उसने सुना। अब उसकी समझ में आया कि इतनी देर से पिनोकी क्या चाहता था।

तभी एक पहले से अधिक प्रभावपूर्ण झटका लगा और दूसरे ही क्षण एक बड़े जोर की आवाज हुई। गेयस तो देख नहीं सकता था किन्तु निकट ही एक बड़ा सा मकान गिरा था। सब ओर गर्द—गुब्बार, गन्धक और धुएं से भरी हवा फैल रही थी, आसपास में आग के शोले चमक रहे थे, एक के बाद एक मकान गिरने लगे। गेयस घबरा गया। किन्तु समझ कुछ न पा रहा था। तभी उसे सुनायी दिया, कोई कह रहा था कि विसूवियस ने आग उगलनी शुरू कर दी है। अब वहां खड़े रहना खतरे से खाली न था और इसीलिए इतनी देर से पिनोकी उसे घसीट रहा था। वह उसे कहीं ले जाना चाहता है, शायद किसी सुरक्षित स्थान का उसे पता है। फिर वहां खड़े रहने पर पता नहीं कब कौन सा मकान उस पर गिर पड़े और दोनों उसके नीचे दब जाये। यह सोच कर गेयस चल दिया।

पिनोकी ने अब भी उसका पल्ला पकड़ रखा था। उसने गेयस को खुले मैदान में लाकर खड़ा कर दिया। वहाँ खड़े होकर गेयस ने जम्हाई लेनी शुरू कर दीं। क्या समय हो गया, यह तो वह नही समझ सका था किन्तु उसे भूख बहुत जोर से लग रही थी, फिर आज वह नाश्ता भी न कर पाया था, इसलिए उसका अनुमान था कि दोपहर होगी। पिनोकी भी उसकी दशा को समझ रहा था किन्तु वह करता भी क्या ? यह समय कितने संकट का है, यह तो केवल वह ही समझता था, उसे अपने से अधिक गेयस की सुरक्षा की चिन्ता थी।

सहसा जहां वे लोग खड़े थे वहां की धरती भी फटने लगी। पिनोकी ने यह देखा और वह फिर उसे खींचने लगा। गेयस उसका आशय न समझ पाया। पता नहीं वह क्या चाहता है, कहीं वह पागल तो नही हो गया। किन्तु नहीं वह उसे शहर के से बाहर की ओर ले जाना चाहता था। समुद्रतट पर बन्दरगाह में एक जहाज खडा था जिस पर नगरवासी चढ़ कर भागने की तैयारी कर रहे थे। आखिर

उसकी समझ में आया कि वह उसे भागने का रास्ता बता रहा है और फिर दोनों समुद्र की ओर चलने लगे। लेकिन केवल चलना काफी न था। लोग तेजी से भाग रहे थे। उन्होंने भी भागना शुरू किया।

किन्तु एक कठिनाई और थी। पाम्पेई के सभी निवासी उसी ओर भाग रहे थे। गेट काफी बड़ा था किन्तु फिर भी छोटा पड़ रहा था और कुचले जाने का डर था। किन्तु और कुछ न हो सकता था। जैसे तैसे वे भी उस भीड़ में शामिल हो ही गये।

तभी आग बरसने लगी। धुएं से सांस घुटने लगी। लगा कि यहीं आग, पत्थर और राख में दब कर मर जाना पड़ेगा। गेयस ने सोचा कि उन लोगों को वहां से निकलने में बहुत देर हो गयी है। वह थक भी काफी गया था, भूखा भी था और आग से झुलसने तथा कई जगह चोट लगने से, अचेत सा हो कर गिर पड़ा। पिनोकी ने उसे उठाने की कितनी ही कोशिश की पर वह न उठा। फिर हार कर उसने उसके पांव में जोर से काट लिया तब वह दर्द से चीखता हुआ उठा और लंगड़ाता हुआ चलने लगा। पिनोकी आगे आगे उसके लिए रास्ता बनाता, भीड़ को भौंक कर, लोगों को काट कर हटाता हुआ चलने लगा और इस तरह वे कुछ ही देर में बन्दरगाह तक आ गये।

लेकिन अब गेयस में शक्ति नहीं रह गयी थी। प्रायः मूर्च्छित होकर वह रेत पर गिर पड़ा। उधर से जाने वाले एक आदमी ने उसे उठा कर नाव पर चढ़ा दिया, और उसके मुंह पर पानी की छींटें दी। तब जाकर उसे होश आया। होश आते ही वह चिल्लाया, "पिनोकी, पिनोकी कहाँ है ?"

लेकिन पिनोकी वहां से गायब हो चुका था।

"जल्दी करो। जल्दी यहां से भागो।" लोग चिल्लाये, क्योंकि विसूवियस का रूप और अधिक प्रचण्ड होता जा रहा था और जल्दी से जल्दी वहां से भागना आवश्यक था। फलतः नाव चला दी गयी।

अन्धा गेयस पूरी ताकत से चीख उठा, "पिनोकी। मेरा पिनोकी

रह गया और वह रोने लगा .

लेकिन पिनोकी वहां कहां था ? वह तो शहर गया था । अपने भूखे साथी के लिए रोटी लेने क्योंकि वह जानता था कि आज उसने सुबह नाश्ता भी नहीं किया था ।

और शहर अब आग, राख और पत्थरों से भरा हुआ था । कौन कह सकता है, कि यह कहानी उस अस्थि-पंजर की नहीं है ?

एक पत्र : एक समस्या

यदि आपको कोई ऐसा लिफाफा मिले जिस पर डाकखाने की दर्जनों मुहर लगी हुई हों, कई बार पता काट कर लाल-नीली स्याही से न जाने क्या क्या लिखा हो, पैंसिल से बहुत से दस्तखत हो रहे हों, जिसकी मुहर देखकर पता चल रहा हो कि वह कई महीने का भेजा हुआ है, और उस पर लिखे हुए भेजनेवाले और पानेवाले दोनों के नामों से आप अपरिचित हों तो आप क्या सोचेंगे, आपको कितना कुतूहल होगा, मैं नहीं कह सकता। लेकिन मुझे तो उस दिन ऐसा लिफाफा पाकर बड़ा ही आश्चर्य हुआ और मैं बड़ी देर तक उसे यूं ही उलटता-पुलटता रहा।

वह नीले रंग का लिफाफा जो कभी बहुत

सुन्दर रहा होगा। बम्बई के किन्हीं पी. कुमार को किसी सरोज वर्मा ने भेजा था। इन सरोज का पता वही था, जो मेरा था। पी. कुमार का सही पता न होने के कारण अथवा किसी अन्य कारण से यह पत्र उन्हें न मिल सका था और अब भेजने वाले के पते पर वापस कर दिया गया था। वही पता मेरा होने के कारण पत्र मुझे मिल गया था। पत्र भेजने का ठीक समय तो किसी मुहर से जान न सका किन्तु एक अस्पष्ट मुहर के अनुसार वह कम से कम पांच महीने पूर्व का भेजा हुआ लगता था मुझे यह तो मालूम नहीं कि यहां उन दिनों कोई सरोज रहती थी लेकिन मेरे इस मकान में आने से पहले कोई वर्मा साहब यहा रहा करते थे जो अब बदलकर कानपुर चले गये थे।

लेबोरेटरी में रासायनिक का द्रवणांक निकालते समय जैसे थर्मामीटर का पारा ऊपर चढ़ता जाता है, उसी तरह मेरा कुतूहल भी इस पत्र के विषय में धीरे धीरे बढ़ रहा था। कुछ देर बाद एक स्थल ऐसा आता है कि जब पारा चढ़ना बन्द हो जाता है, वह रासायनिक का द्रवणांक होता है। उसी तरह कुतूहल की भी एक चरम सीमा आती है, जिसके बाद कितने ही व्यवधान होने पर भी सब्र नहीं किया जाता। जब वह चरम सीमा आ गयी तो मैंने वह लिफाफा खोल ही डाला। न जाने क्यों उस पत्र मे क्या लिखा है, यह जानने की मुझे तीव्र इच्छा हो रही थी इसलिए नैतिकता और सदाचार की भावनाओं को ढकेल कर बाहर निकाल देने के लिए मैं विवश था और फलत नीले पैड के कागज पर छोटे छोटे कलात्मक अक्षरों में लिखा वह पत्र पढ़ने लगा:

महोदय,

मेरा नाम आपके लिए शायद अपरिचित ही है और इसलिए आपको यह पत्र देखकर अचरज हुए बिना न रहेगा। अपना परिचय देने से अधिक महत्त्वपूर्ण इस पत्र का उद्देश्य बताना है इसलिए मैं वही कर रही हूं।

मैं आपका नाम जानती हूं। आपको देखा कभी नहीं है लेकिन आपके बारे में सुना काफी है। मैं आपको आपके विवाह के पूर्व, यहा के जीवन की घटनाओं और यहां के साथियों की याद दिलाना चाहती हू। साथियों में भी किरण की, आपकी पत्नी की बड़ी बहन की बात मुझे आपके सामने रखनी है उस बात को आपने अनुभव तो अवश्य किया होगा किन्तु फिर भी उस पर गौर नहीं किया।

किरण मेरी सहेली है। उसकी एक एक बात मुझे पता है लेकिन उसने सिर्फ यही बात मुझे अब तक नहीं बतायी थी। उसे वह उपले की आग की तरह अपने गर्भ में ही छिपाये रखना चाहती थी। कल बहुत जिद करने पर, न जाने कितनी कसमें और वचन लेने पर उसने यह भेद प्रकट किया है। लेकिन इसका प्रभाव उसके जीवन पर इतना घातक हुआ है कि सारी कसमें और वचन तोड़कर मैं यह बात आप तक पहुँचायें दे रही हूँ। शायद आप ही कोई रास्ता निकाल सकें।

आप जब पहले-पहल उस घर में आये थे तब आपके सामने दो चेहरे उपस्थित हुए थे। एक तो चंचल और शोख सुमन का और दूसरा शात और गम्भीर किरण का। तब आपके हृदय में सुमन की शैतानियों से परेशान हो कर गम्भीर किरण के प्रति आकर्षण पैदा हो गया था। जो जब तक आप वहां रहे, आपके व्यवहार से टपकता रहा। इसे किरण पहले ही समझ गयी थी। इस आकर्षण की बात आप कभी अस्वीकार न कर सकेंगे, ऐसा मेरा विश्वास है। काश, तब यह आकर्षण न दिखाया होता!

ज्वालामुखी पर्वतों की एक किस्म वह भी होती है जो ऊपर से शान्त रहते हैं लेकिन उनके गर्भ में न जाने कितनी आग भरी रहती है। किरण ने यह बात आपसे ही सुनी थी और इसे गहराई तक समझा था।

एक दिन आपने बातों ही बातों में कह दिया था कि लड़कियो

को चित्रकला अवश्य आनी चाहिये। सुमन ने इस बात का मजाक भी उडाया था किन्तु किरण थोड़ी ही देर बाद मेरे घर आयी थी और मुझ से अवनीन्द्रनाथ तथा नन्दलाल बसु के चित्रों की पुस्तकें और ड्राइङ्ग के न जाने क्या क्या सामान मंगवा डाले थे। फिर वह रोज रात को अपना कमरा बन्द करके एक-एक, दो-दो बजे तक कितने ही महीने तक चित्रकारी का अभ्यास करती रही, यह आपको पता न होगा। तब मुझे भी इतना कुछ पता न चल पाया था, इसका कारण भी मुझे न बताया था किन्तु इसके पीछे क्या भाव था अब भली प्रकार जान गयी हूं।

आपको शायद ध्यान हो, आपकी पुस्तकों की अलमारी में एक बार एक अभिसारिका का चित्र निकला था। उसके बारे में आपके पूछने पर घर भर में बड़ा तूफान मचा था। सुमन ने आपको बनाते हुए कहा था कि न जाने कौन कौन लड़कियां आपके पीछे पड़ी रहती हैं, उन्हीं में से किसी ने भेंट किया होगा, अब छिपा रहे हैं। मुझे मालूम नहीं कि आपको बाद में उस रखनेवाले व्यक्ति का पता लगा था कि नहीं। वह किरण ने कई रातों के परिश्रम से तैयार करके आपकी पुस्तक में रखा था। उसे आपको दिखा कर वह यह जताना नहीं चाहती थी कि मुझे चित्रकारी आती है। वह तो बस, आपके मुख से उस चित्र के बनाने वाले की कला की प्रशंसा सुनना चाहती थी। उसमें इतना साहस कहाँ था कि वह आपके सामने स्वयं अपने इस अनवरत श्रम को रखे अथवा यह स्वीकार कर सके कि यह मैंने ही बनाया है, और मुझे चित्रकारी आती है। उस चित्र को लेकर इतनी चर्चाएं हुई किन्तु आपके मुंह से कभी भूल कर भी एक शब्द उसकी प्रशंसा का न निकला, जिसे सुनने के लिए किसी के कान कितने तरस रहे थे, यह आपको क्या पता ?

ये सब घटनाएं आपके सामने ही हुई हैं इसलिए निश्चय ही आप इनके बारे में मुझसे अधिक ही जानते होंगे। लेकिन शायद आपने इनके

पाछे छिपे कारणा और इनके कारण किरण पर पड़ने वाले प्रभावो के बारे में न कभी सोचा और न अनुमान ही लगाया । नहीं तो यह नौबत ही न आती ।

न तो आपने ही किरण से कभी प्रत्यक्ष रूप में बात की थी और न उसने ही । वह तो आपके सामने भी गिने चुने अवसरों पर ही आती थी । लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से आप किरण के लिए कितनी ही बातें करते थे जिन्हें वह खूब समझती थी । सुमन को सम्बोधित करके, मजाक के रूप में या अन्य तरीकों से आप अपने मत, अपने विचार और अपनी पसन्द, सब कुछ प्रकट करते रहते थे । जिन्हें किरण अपने अन्तर के प्रकोष्ठ में चुपचाप, सावधानी से संजो लिया करती थी और उनके अनुरूप अपने को रखा या बदला करती थी । अपने इनप रिवर्त्तनो का ढिंढोरा तो वह पीटती ही न थी, प्रत्यक्ष रूप से भी आप पर प्रकट न होने देती थी किन्तु इतना प्रयत्न वह अवश्य करती थी कि आपको उसके परिवर्त्तन और रुचि का आभास अप्रत्यक्ष रूप से मिल जाये । आप यह सब जानते थे, समझते थे, चाहे इस समय आप इससे कितना ही इन्कार करें ।

आपने कभी कह दिया होगा कि मुझे आसमानी रँग बहुत अच्छा लगता है । तब से अब तक वह आसमानी रंग के कपड़े ही पहनती है । हमेशा उसे एक ही रंग की साड़ियां पहनते देखकर कई बार मैंने टोका भी पर उसने हमेशा मुझे टाल ही दिया, "मुझे आसमानी रग पसन्द है ।" और बड़े चाव से खरीदे हुए उसके अन्य रंगों के ढेर सारे कपड़े अब तक सन्दूक में ही बन्द रखे है । यहां तक कि उसने अपना पेन, पैड, लिफाफे आदि सभी चीजें भी आसमानी रंग की ही रखी हुई है ।

जैसा कि मैंने प्रारम्भ में ही लिखा है कि किरण की सभी बातें मुझे पता चलती रहती थीं । मैं इनमें उसकी सहायता भी किया करती थी और समय समय पर सलाह भी दिया करती थी, किन्तु वह

ऐसा किसलिए करती है क्यों करती है यह उसने कभी नहीं बताया हमेशा बहाना बना दिया।

एक बार वह मेरे पास आयी और मुझसे एक अंग्रेजी पिक्चर देखने चलने की जिद करने लगी। मुझे अंग्रेजी सिनेमा में कभी दिलचस्पी नहीं रही और मुझे पता था कि किरण को भी उनका शौक न था। वह तो हिन्दी सिनेमा भी शायद ही कभी देखती थी। उस दिन उसके जिद करने पर मुझे आश्चर्य हुआ। मैंने पूछा, "आखिर, ऐसी क्या जरूरत आ गयी पिक्चर देखने की ? और अंग्रेजी पिक्चर का शौक कब से हो गया तुझे ?"

"जरूरत कुछ भी नहीं। अंग्रेजी पिक्चर अच्छी होती हैं, और यह तो बहुत अच्छी है। इसकी हीरोइन का अभिनय तो गजब का है !" वह बोली।

अंग्रेजी पिक्चर की तारीफ और किरण द्वारा, मुझे और अधिक आश्चर्य हुआ, "तू सिनेमा की शौकीन कब से हो गयी ?"

"बहस तो कर मत। जल्दी तैयार हो जा। चलना जरूर है।"

मैंने कई मजबूरियां उसके सामने रखीं किन्तु वह नहीं मानी। मुझे उसके इस परिवर्त्तन पर तब तो बहुत आश्चर्य हुआ था किन्तु अब समझती हूं कि वह स्वाभाविक ही था। उसने अब बताया है कि आपने सुमन से उस पिक्चर की बहुत तारीफ़ की थी और बताया था कि उसकी हीरोइन आपको बहुत ही पसन्द है। फिर भला किरण उसे कैसे न देखती ?

फिर आपके विवाह की बात चली थी। आपने न जाने क्या सोचकर, किरण के सपनो की चिन्ता किये बिना ही, या यों कहिये उसके सपनों की अनजाने अवहेलना करके, सुमन से ही विवाह करने का प्रस्ताव रखा। आपके परिवार वालों ने भी बड़ी बहन के अविवाहित रहते ही छोटी बहन से विवाह करने पर जोर दिया। यहां वालों को सम्बन्ध स्वीकार तो था किन्तु वे बड़ी लड़की के विवाह तक ठहरना

चाहते थे, किन्तु जब आपके परिवार वालों ने जल्दी की तो मजबूरन सुमन का विवाह पहले ही करना पड़ा। किरण के मन पर इसका क्या आघात हुआ, उसकी वर्षों से संचित साधों का क्या हुआ, यह बताने से क्या लाभ किन्तु इतना तो आपको पता ही है कि उसने अब तक विवाह नहीं किया और अपनी पीड़ा को भीतर ही छिपाये रही, जो उसके शरीर को घुन की तरह खोखला करती रही।

आप किरण को कभी न समझ सकेंगे, मैं भी काफी दिनों तक नहीं समझ सकी थी। किन्तु न जाने क्यों मेरा मन कहता है कि आपने उसे समझा तो था किन्तु शायद जानबूझ कर उसे न समझने का बहाना किया। इसका कारण क्या था, यह तो आप ही जानें।

कारलाइल ने एक जगह लिखा है: 'जो प्रेम प्रकट न किया जाये वह सबसे पवित्र है।' किन्तु ऐसी पवित्रता को लेकर क्या किया जाय, जिसके कारण हाथ मलने के अतिरिक्त कुछ परिणाम न निकले। किरण की संकोचशील भावुकता को मैं मूर्खता के अतिरिक्त कुछ न कहूंगी। आपको मेरे विचारों में व्यावहारिकता और संकीर्णता की गन्ध आ रही होगी, किन्तु मूर्खता और बुद्धिमानी का सही मापदण्ड स्थिर करने के लिए मनुष्य को व्यावहारिक बनना ही पड़ता है। मैं मानती हूं कि प्यार करना एक कला है और कला वास्तव में संयम का पर्याय है। फल की ओर से आँख मूंद कर संयम से कर्म किये जाने का अब युग नहीं है। गीता का यह उपदेश द्वापर के लिए ठीक हो सकता था किन्तु आज के इस भौतिक युग में तो केवल उपदेश-मात्र ही रह गया है। इसी संयम का फल तो किरण भोग रही है, आज तीन महीने से चारपाई पर पड़ी, अपनी मूर्खतापूर्ण भावुकता की असलियत समझने का प्रयत्न कर रही है, और डाक्टर टी. बी. की घोषणा कर चुका है।

आंसुओं से वेदना धुल जाती है, रोने से दर्द हल्का हो जाता है, यह बातें कवियों और दार्शनिकों के लिए सही हो सकती हैं किन्तु

वास्तव में पीड़ा और दर्द का कोई इलाज नहीं होता । वह तो अन्य बीमारियों की तरह रग रग के रक्त में व्याप्त हो जाती है और उपयुक्त निवारण न किया जाये तो सांस के अन्तिम छोर तक साथ नही छोडती ।

इस पत्र का उद्देश्य आपको दुखी करना नहीं है । मेरा आपसे कोई परिचय नहीं है, कोई सम्बन्ध नहीं है, इसलिए ऐसा करने का मुझे कोई अधिकार भी नहीं है । किन्तु किरण मेरी है । उसके जीवन से मुझे इतना मोह है जितना शायद स्वयं अपने से भी नहीं । मैं हर सम्भव यत्न करके उसे बचाना चाहती हूं । उसके रोग के पीछे कोई न कोई मानसिक कारण है, यह मुझे विश्वास हो गया था और इसे जानने के लिए मुझे काफी खोज बीन करनी पड़ी है । कुरेद कुरेद कर पूछना पडा है । उसकी छिपाने की आदत अब भी वैसी ही है, बल्कि कुछ बढ ही गयी है, इसलिए कितनी कठिनाई हुई होगी, आप जान सकते हैं । यह सब जानने पर क्या करूं समझ में नही आ रहा है । डाक्टर की दवाएें तन का इलाज कर सकती हैं, मन का नहीं । एक असहाय लडकी के सामने उसकी प्राणों से भी प्रिय सहेली के जीवन का प्रश्न विकराल रूप धारण किये खड़ा है । ऐसे समय में यही क्या कम है कि मेरा सन्तुलन अब तक स्थिर है, और मैं विचलित नहीं हुई हूं । फिर भी यदि आपको मेरा यह पत्र लिखना उचित न लग रहा हो तो इसके लिए मैं क्षमा मांगे लेती हूँ । किन्तु इस समय मेरे पास इन सब औपचारिकताओ के लिए अवकाश नहीं है । मैं आपके सामने सब बातें रखकर आपकी सलाह चाहती हूँ—अब क्या किया जाये कि किरण बच जाये ? इसके लिए मैं आपको दोष देना चाहकर भी नहीं दूंगी क्योंकि मुझे लगता है कि गलती सुधारने के लिए अभी समय है । कोई उचित उपाय शीघ्र करिये, मेरी प्रार्थना है । इतना स्पष्ट और कर दूं कि किरण के जीवन के साथ बहुत कुछ मेरा जीवन भी निर्भर है । यदि उसे कुछ हो गया तो इसका मानसिक आघात मैं संभाल सकूंगी, इतनी सहनशक्ति मैं नही

जुटा पा रही हूँ। अब यह प्रश्न एक जीवन का न रह कर दो जीवन का हो जाता है, किन्तु अपने लिए मुझे आपसे कुछ नहीं माँगना है। बस, आप किरण को बचाने का प्रयत्न कीजिये, यह मेरी याचना है, समय कम है, बहुत कम है। इसका ध्यान रखें।

सुमन को इस पत्र के बारे में मत बताइयेगा, यह अनुरोध है क्योंकि किरण यह नहीं चाहती कि सुमन के जीवन पर कोई बदली छाये या तूफान आये। उस को यदि किसी तरह की चोट पहुंची, तो किरण को ही दुख होगा। उसकी हार्दिक शुभकामनाएं सुमन के अखण्ड सौभाग्य के लिए हैं।

हां, एक बात और, मैं यह पत्र किरण से छिपा कर लिख रही हूं। उसे पता चल जाय तो यह पत्र आपके पास कभी नहीं पहुँच सकता।

उत्तर की अपेक्षा में, विनीता—

किरण की एक शुभचिंतिका

पत्र पढ़कर मैंने एक लम्बी सांस ली और लिफाफे को देखने लगा। पत्र पर भी कहीं कोई तारीख नही थी। फिर भी एक मुहर के अनुसार उसे भेजे हुए पांच महीने से ऊपर ही हुए थे। इस बीच उस किरण का क्या हुआ होगा और उसके कारण इस सरोज का क्या हाल होगा, मैं सोचने लगा। लेकिन किसी निश्चित नतीजे पर न पहुँच सका। इनकी स्थिति के विषय में तरह तरह के अनुमान लगाने की निरर्थकता जब मैं समझ गया तो एक प्रश्न मेरे मन में उठा। यदि यह पत्र इन पी. कुमार को मिल भी जाता तो क्या वे किरण को बचाने का उपाय निकाल सकते थे? क्या ऐसी परिस्थिति के लिए स्वयं मेरे पास ही कोई हल है?

मैं इन प्रश्नों में आज तक उलझा हुआ हूं। जब भी खाली बैठता हूं किरण की करुण मूर्ति प्रश्नाकार रूप में मेरे सामने आ जाती है

और मुझसे इसका हल मांगती है । एक कहानीकार होने के नाते सामाजिक समस्याएं सुलझाने का दायित्व मुझ पर अनायास ही आ जाता है । किन्तु मैं इसमें अपने को असफल पाता हूं । किरण और उसकी सहेली का क्या हुआ होगा, पता नहीं चल सकता । किन्तु इतने बड़े समाज में ऐसी कितनी ही किरण होंगी और कितनी ही उनकी सहेलियों के सामने ऐसी ही समस्या हो सकती है । यदि पाठक इसका कोई उपयुक्त हल बता सकें, तो अपने कुतूहल के लिए और उन सहेलियों के हित के लिए मैं जानना चाहूंगा ।

●●

फ़लातून की बेटी

एक अरसे से मेरी राय रही है कि याद रखना
ुच एक बीमारी है, एक ऊबा देने वाली बीमारी।
बडे संसार में कितने ही छोटे-बड़े कार्य-व्यापार
ते हैं, मनुष्य का छोटा सा मस्तिष्क किस किस
याद रखे। व्यावहारिक रूप से चिन्तन करने पर
ास निष्कर्ष पर पहुंचा हूं कि मनुष्य जितनी अधिक
याद रखेगा, उसका उतना ही अधिक दायित्व बढ़
गा, वह उतना ही अधिक व्यस्त हो जायगा और
स्वरूप परिश्रम अधिक करना पड़ेगा, परेशानियां
गी, चिन्ताएं बढ़ेंगी, और परिणामतः उसकी उम्र
हो जायगी। मेरा तो जल्दी मरने का कोई
ाम नहीं है इसलिए मैं इस बीमारी से दूर दूर ही
ा चाहता हूं। लेकिन फिर भी जब तब मुझे

इसकी गिरफ़्त में आ ही जाना पड़ता है। न जाने किस महापुरुष ने लिखा था कि अच्छी याददाश्त के लिए भुलक्कड़ होना चाहिये। यह तो मुझे याद नहीं कि वे महापुरुष कोई भविष्यवक्ता या औलिया थे कि नहीं, लेकिन उनकी कही हुई यह बात रुपये में सौ नये पैसे सही उतरी। मेरे लिए तो इसका उल्टा भी सही साबित हुआ और भुलक्कड़ होने के कारण मुझे याद रखने की भी कुछ बीमारी हो गयी।

इस बीमारी के दौरे के कारण ही मुझे याद है कि मैं उस दिन लखनऊ जा रहा था। रेडियो से एक कहानी पढ़नी थी। दरजे दो की बर्थ पर बिस्तरा लगा कर प्रायः अधलेटी अवस्था में जब एक फ्रांसीसी उपन्यास के अंग्रेजी अनुवाद में अपने को इस तरह रमा लिया कि मैं यह भूल चुका कि मुझे कहां जाना है, तब कहीं मुझे चैन मिला जैसे सिर से एक बोझ उतर गया हो।

एक स्थल पर उपन्यास की नायिका नायक को बुरी तरह लताड़ रही थी। संवाद इतने सजीव थे कि उन्हें जोर जोर से पढ़ने को तबियत करने लगी और मैं यह भूलकर कि रेल के कम्पार्टमेंट में बैठा हुआ हूँ, जोर जोर से पढ़ने लगा। लोगों की दृष्टि मेरी ओर जम गयी होगी और सब मुझे ग़ौर से देख कर न जाने क्या क्या सोचने लगे होंगे। किन्तु मुझे कुछ ध्यान ही न था और अधिक जोशीला स्थल आने पर और जोर से पढ़ने लगा। अब कुछ लोग अपनी हंसी रोक नहीं सके होंगे इसलिए वे हंस पड़े और उसी क्षण एक ऐंग्लो इण्डियन लेडी का झबरे बालों वाला कुत्ता भी भौंक उठा। उस आवाज से मेरा ध्यान पुस्तक से तो हट गया किन्तु चारों तरफ देखकर भी मैं यह नहीं तय कर पाया कि मैं कहां हूँ? रेल के डिब्बे में भी कोई भौंकता हुआ कुत्ता हो सकता है, मुझे विश्वास नहीं हुआ। मैं इस तरह हड़बड़ाया हुआ देख ही रहा था कि एक ओर टिकट चेकर ने आकर मुझसे टिकट माँगा। अब मुझे निश्चय हुआ कि सचमुच मैं रेल में ही हूँ, और पुस्तक बन्द करके टिकट निकालने लगा। जेब में फिर पर्स में देखा किन्तु टिकट

गलती कर डाली हो। आखिर मुझे उन लोगों को मूर्ख या पागल समझ कर संतोष कर लेना पड़ा।

पता नहीं टिकट की सहायता से या रेडियो पर कहानी पढ़ना याद रहने के कारण से या उस गाड़ी के लखनऊ ही समाप्त हो जाने से, मैं सकुशल लखनऊ स्टेशन पर उतर गया। सम्बन्धियों के यहाँ कुछ अजीब तरह का संकोच सा, बंधापन सा रहता है, इसलिए सम्बन्धी होते हुए भी होटल में जाकर एक कमरा ले लिया।

कुछ देर बाद सिगरेट पीने की इच्छा हुई। सिगरेट-केस देखा, खाली था। सोचा, बैरे को क्या आवाज दें, स्वयं ही लेआयें, जरा नीचे तक घूम भी आयंगे।

अक्सर अपने कमरे का नम्बर भूल जाता हूँ और फिर परेशानी उठानी पड़ती है। इस बार ऐसा न हो इसलिए रास्ते भर वह नम्बर याद करता हुआ गया और लौट कर भली प्रकार नम्बर देख कर उसी कमरे का दरवाजा खोल कर जो देखा तो अन्दर एक ऐंग्लो इण्डियन महिला को अर्ध-नग्न अवस्था में लेटे पाया।

अपने कमरे में एक अन्य व्यक्ति और वह भी इस अभद्र ढङ्ग से देखकर क्रोध से बोला, "आप मेरे कमरे में क्या कर रही हैं?"

महिला ने कुछ तेजी से कहा, "आप गलती कर रहे हैं। आपको एक लड़की के कमरे में अचानक घुसते हुए शर्म नहीं आती?" उसके साथ ही कहीं से निकल कर एक छोटा सा झबरे बालों वाला कुत्ता भौंकने लगा।

कुत्ते की आवाज से मुझे याद आया कि इस महिला को तो पहले भी कहीं देखा है। रेल में शायद। तो क्या रेल से यह मेरा पीछा कर रही है? मुझे क्रोध तो आ ही रहा था, इस विचार से और बढ़ गया, "लेकिन कमरा तो मेरा है। आप इसमें आयी ही क्यों? फिर गलती मेरी बता रही हैं। जरा ठहरिए, मैं अभी मैनेजर से रिपोर्ट करता हूँ।" और मैं मैनेजर के पास जा पहुँचा। सब बताने पर उसने

बताया, कि गलती मेरी ही है । मैं पहली मजिल के उसी नम्बर के कमरे में चला गया हूँ जबकि मेरा कमरा दूसरी मंजिल पर है ।

नम्बर डालने के इस गलत ढङ्ग पर मैनेजर को गालियां सुनाने के बाद मैं ऊपर की ओर चल दिया । रास्ते में ही वह महिला मिल गयी । बड़ी आकर्षक मुद्रा में मुस्कराने के बाद बोली, "कहिये, रिपोर्ट कर दी ?"

मैंने उपेक्षा से उसकी ओर देखा और आगे जाने लगा ।

वह मेरे सामने आकर फिर बोली, "सुनिये तो, आप तो बड़े भुलक्कड़ हैं ।"

मेरा क्रोध शांत नहीं हुआ था, इसलिए उसकी बात पर ध्यान न देता हुआ आगे बढ़ गया ।

वह भी पीछे पीछे आने लगी । थोड़ी देर बाद बोली, "आपके इस भुलक्कड़ पन के कारण ट्रेन में भी खूब हंसी आती रही । सारा सफर मजे से कट गया । सचमुच, बड़े दिलचस्प आदमी हैं आप !" और वह हँस दी ।

उसकी ओर से तटस्थ हो कर मैंने अपना कमरा खोल दिया और एक कुर्सी पर बैठ कर सिगरेट पीने के लिए सिगरेट ढूंढी । ध्यान आया, सिगरेट तो शायद मैं मैनेजर के काउण्टर पर ही भूल आया । दोबारा जाने के लिए सोच ही रहा कि वह महिला पीछा करती हुई आ गयी और बिना मेरे कहने की प्रतीक्षा किये ही अन्दर आकर एक कुर्सी पर बैठ गयी ।

मैं उससे खीझ गया था । दूसरे, सिगरेट लेने के लिए मुझे दोबारा दो मंजिलें उतर कर नीचे जाना और आना व्यर्थ पड़ेगा, इसलिए और बुरा लग रहा था । मैं मन ही मन उस अफलातून की बेटी को कोसता हुआ चुपचाप उसे देखता रहा और प्रतीक्षा करता रहा कि वह अब क्या कहेगी और उसका यहां आने का क्या तात्पर्य है ?

उसने सिगरेट का डिब्बा मेज पर रखते हुए कहा, "यह देने

आयी हूं। आप इसे कमरे में भूल आये थे।"

"शुक्रिया,, सचमुच इसने बड़ा काम किया था। मैं मैनेजर के के पास इसे न पा कर दूसरा डिब्बा ही खरीदता क्योंकि एक तो मुझे इसके कमरे में डिब्बा होने का ध्यान ही नहीं था और यदि होता भी तो मैं वहां जाने का साहस नहीं कर सकता था। मैंने प्रकट में लापरवाही से उसकी ओर देखते हुए एक सिगरेट सुलगा ली।

वह वैसे ही बैठी रही, और बड़े गौर से मुझे देखती रही। फिर सहसा बोली, "मेरा नाम मेरी है। मेरी क्लाडियस। और आप ?"

"सतीश सरकार।" अनिच्छापूर्वक मैंने कहा और दूसरी ओर देखने लगा। यह ठीक था कि उसने मेरी सहायता की थी किन्तु उसका व्यक्तित्व मुझे आकर्षित न कर पाया था, शायद उसके स्वयं मेरी ओर इस तरह बढ़ने के कारण।

"वैरी गुड। बात यह थी कि जब हम लोग इस तरह बार बार मिल जाते है तो हमारा आपस में परिचय हो जाना ही चाहिये था। क्यों, ठीक है न ?"

सिगरेट का धुंआ ऊपर की ओर उड़ाते हुए मैंने सिर हिला दिया।

"आप मुझे मेरी न कहना चाहें, तो मीरा कह सकते हैं।"

मैंने आखें फाड़कर उसकी ओर देखा। इसका आशय क्या हो सकता है, मेरी समझ में नहीं आया। मेरी अथवा मीरा, कुछ भी कहने का कम से कम मुझे कोई अवसर क्यों मिले ? न तो मैं चाहता ही हूँ और न आज के बाद फिर हमारे मिलने की सम्भावना हो सकती है। कोई आशय निकालने का समय दिये बिना ही वह फिर बोली, "आप क्या करते हैं ?"

मैं बहुत चाहने पर भी उसमें कोई दिलचस्पी पैदा नहीं कर पा रहा था। ऊबकर छुटकारा पाने के विचार से इस तरह के जितने भी प्रश्न हो सकते थे सबका उत्तर एक साथ देते हुए कहा, "मैं मेरठ में

रहता हूं कहानियां लिखता हूं और यहां रेडियो पर कहानी पढ़ने के लिए आया हूँ। इन्कमटैक्स के दफ्तर में आफीसरी करता हूँ । मेरा विवाह नहीं हुआ है और न निकट भविष्य में होने वाला है। कल शाम की गाड़ी से वापस जाऊंगा। बस, मैं समझता हूँ कि अब तो आपको और कुछ पूछना बाकी नहीं रहा होगा ?''

वह मुस्करायी फिर बोली, "अरे, आप तो नाराज हो गये। मेरा आशय यह नहीं था। खैर, इस समय कहीं घूमने चलिये।''

प्रश्नों से हट कर प्रस्तावों का नम्बर आया! मैं तेज होकर बोला, "नहीं, बिल्कुल नहीं। मैं चाहूंगा कि अब आप मुझे क्षमा करें। जरा आराम करना चाहता हूं। गुड बाई।''

"वाह, मैं तो समझी थी कि मैं अपने कमरे में हूं और आप मेरे पास आये हैं। लगता है, आपके भुलक्कड़पन का असर मुझ पर भी हो गया। खैर, फिर मिलेंगे।" और वह एक आकर्षक नजर मुझ पर डालती हुई चली गयी।

मैं थोड़ी देर तक इस अजीब महिला का मनोविश्लेषण करता रहा। बुझी हुई चिन्गारी की तरह तेजहीन चेहरे को पाउडर, रूज और लिपस्टिक से जबरदस्ती आकर्षक बनाने में आवश्यकता से अधिक निपुण महिला युवती और अधेड़ के बीच की उम्र की होगी किन्तु अपनी कुशलता से युवती ही लगती थी। उसके शरीर में अजीब सा बेडौलपन था और मेरे जैसे दुबले पतले व्यक्ति के अनुपात में यह बेडौलपन और अधिक लगता था।

फिर उसके बेडौलपन, उसके स्वभाव और उसके लिए अनायास ही जो नाम मैंने रख दिया था, उसे सोच कर हंसते हंसते नींद आ गयी।

रात को जब रेडियो स्टेशन से लौटा तो कमरे का दरवाजा खोलते ही सामने कुर्सी पर बैठी वही अफलातून की बेटी दिखायी दी। वह कोई किताब पढ़ रही थी। उसे देखते ही मैं चौंक कर पीछे हटा जैसे कोई साँप देख लिया हो। उस समय मेरा मूड बढ़िया हो रहा

था और उससे बिना वजह बात करके मैं बोर होना नहीं चाहता था। चुपचाप बाहर आकर मैंने कमरे का नम्बर देखा। नीचे झांककर मंजिल की ऊंचाई का अन्दाजा लगाया, कमरे में अपनी चीजों को पहचाना और जब निश्चय हो गया कि कमरा मेरा ही है तो मजबूरन मुझे अन्दर घुसना पड़ा।

पास जाकर देखा वह किताब खोले हुए सो रही थी, और दूसरा आश्चर्य हुआ कि उसने किताब उल्टी खोल रखी थी। हंसने की इच्छा इच्छा होते हुए भी हंसा नहीं क्योंकि उसे जगा कर उससे बातें करने का साहस मुझमें नहीं था।

थोड़ी देर बाद उसकी नींद टूटी। वह हड़बड़ाकर मेरी ओर देखती हुई कुछ रुक कर बोली, "ओह, तो आप आ गये। मैंने आपकी कहानी सुनी थी।"

"शुक्रिया।" मुझे कहना पड़ा।

"वह बहुत अच्छी थी।"

"शुक्रिया।" मैंने फिर कहा।

"मैं उसकी प्रशंसा करने ही आयी थी।"

तो इस बात के लिए यह इतनी देर से कुम्भकर्णी आसन जमाये बैठी थीं। समझकर मुझे हंसी आ गयी किन्तु बोला, "शुक्रिया, और कुछ···?"

वह बिना हतप्रभ होते हुए बोली, "जी, आप बहुत अच्छे हैं। मेरा मतलब अच्छे कहानी लेखक हैं। मैंने आपकी कहानियां मैगजीन्स में भी पढ़ी हैं। शायद, 'कल्याण' में।"

"कल्याण में!" कल्याण जैसी धार्मिक पत्रिका में मुझ जैसे नास्तिक की कहानी छपने की बात सुनकर मुझे इतना आश्चर्य हुआ जितना अपने को मंगल–ग्रह में देख कर भी न होता। शायद उस बेचारी को और किसी पत्रिका का नाम ही पता न था,

मैं इस पर कुछ इस तरह से हंसा जैसे कि उसने हाथी को

चीटी कह दिया हो। मेरे इस व्यवहार से वह बेहद झेंप गयी और तुरन्त वहां से चली गयी। उससे इतनी जल्दी छुट्टी पाने की प्रसन्नता मे मैं यह भी भूल गया कि उसे बुरा लगा होगा।

अगले दिन कोई विशेष बात नहीं हुई। बैंक से मैंने चैक भुनाया। एक आध जगह मिलने गया। कुछ ऐतिहासिक स्थानों को देखा। कुछ मार्केटिंग भी की। फिर होटल चला आया। अफलातून की बेटी इस बीच कही नहीं मिली। सुबह चाय के वक्त मैं सोच रहा था कि वह जरूर आयगी किन्तु खाने के समय तक नहीं आयी। पीछे आयी हो तो कह नहीं सकता। लौटकर भी जब काफी देर तक वह नही आयी तो न जाने क्यों मुझे उसकी कमी खटकने लगी। यह निश्चित था कि मैं उसका साथ नहीं चाहता था फिर भी उस समय उसकी आवश्यकता लगने लगी थी। अपरिचितों के बीच ऐसे लोग भी कभी कभी आवश्यकता बन जाते हैं। शायद वह कल के मेरे व्यवहार का बुरा मान गयी, यह सोच कर मुझे कुछ खेद हुआ। पर साथ ही संतोष भी हुआ कि एक अजीब व्यक्तित्व से पीछा तो छूटा।

शाम की गाड़ी से लखनऊ से वापस चल दिया। डिब्बे में जाकर बैठा ही था कि मेरी भी उसी कम्पार्टमेंण्ट में अपने कुत्ते के साथ जा घुसी। उस समय उसने हिन्दुस्तानी महिलाओं की तरह साड़ी पहन रखी थी, उसे फिर देखकर मुझे आश्चर्य हुआ और साथ ही अजीब सी खुशी तथा दुख भी हुआ। मैंने देखा वह हमेशा की तरह भद्दे ढंग से मुस्करा रही थी। यो उसका मुस्कराना आकर्षक था किन्तु मुझे उसके और व्यक्तित्व के कारण भद्दा ही लगता था।

रास्ते भर कोई विशेष बात नहीं हुई। मैं अपनी पुस्तक में इतना व्यस्त रहा कि उसकी ओर या कम्पार्टमेंट के अन्य लोगों की ओर देखने का अवसर ही न मिला। मेरी ने भी बात करने की कोई चेष्टा न की।

मेरठ पहुँच कर मैं उतर पड़ा और एक नजर मेरी की ओर

डाली । वह दूसरी ओर देख रही थी । अपना सामान कुली पर रखवा कर बाहर आ गया । वेस्टर्न रोड को एक रिक्शा करके बैठने ही जा रहा था कि सहसा पार्श्व में आकर मेरी उपस्थित हो गयी । कुत्ता पीछे पीछे आ रहा था ।

शिष्टाचारवश मैंने पूछा, "आप भी उधर ही चल रही हैं, क्या ?"

इसका उत्तर उसने रिक्शा पर बैठकर दिया । मैं चुपचाप उसकी बगल में आ बैठा और रिक्शा चल दी । पीछे पीछे उसका कुत्ता भी दौड़ने लगा ।

रिक्शा जब मेरी कोठी में घुसी और मेरी ने उतरने को नहीं कहा तो मैं समझा कि शायद यह मुझे उतार कर इसी रिक्शा पर आगे जायगी ।

मुझे देखकर नौकर ने सलाम किया और सामान उतारने लगा । मैं मेरी की ओर देखकर आंखों ही आंखों में 'गुड बाई' करके अपने कमरे की ओर चल दिया ।

थोड़ी देर बाद कपड़े बदल कर जब मैं अन्दर पहुंचा तो देखा मेरी एक भारतीय नारी की तरह बरामदे में बैठी तरकारी काट रही है ।"

मैंने आश्चर्य से पूछा, "आप अभी तक यहीं हैं ? अपने घर नहीं गयीं ?"

वह मेरी ओर देखकर उसी ढंग से मुस्करायी जिसे मैं भद्दा समझता था पर बोली कुछ नहीं । मेरी सहन-शक्ति जबाब दे चुकी थी, "मैं बिल्कुल ठीक कहता हू, कि यह घर मेरा है । इस बार मैं गलती से आपके घर में नहीं घुसा हूँ । मेरी याददाश्त इस समय बिल्कुल ठीक काम कर रही है । फिर आप यहां कैसे बैठी हुई हैं ?"

"ठीक है, यह घर तो आपका ही है । यह नौकर चाकर, यह सामान सब आपका ही है किन्तु मैं भी तो आपकी ही हूँ, यह क्यों भूले जा रहे हैं ? आप में यही तो मर्ज है, आप एक बात याद रखते हैं, दूसरी भूल जाते हैं ।"

मुझ पर जैसे ऐवरेस्ट टूट पड़ा हो। यह क्या कह रही है, मैं समझ न पाया।

"आप तो बहुत ही भुलक्कड़ है। मैंने तो वहीं कहा था कि कहीं यह बात भी न भूल जाना। वही हुआ न? दो दिन की बात भी याद नहीं। भई, लखनऊ में हमने सिविल मैरिज की थी। दो दिन साथ रहे। वहां की सैर की, मार्केटिंग की। सब कुछ भूल गये! खैर, कोई बात नहीं। आपकी भूलने की आदत का इलाज तो मैं कर दूंगी, आप आफ़िस के लिए तैयार होइये."

तब से आज तक मैं कितना ही याद करने का प्रयत्न करता हूँ किन्तु मुझे याद ही नही पडता कि कब मैंने यह शादी की. मैं सच कहता हूं कि कभी मैंने ऐसा किया ही नहीं. मेरे भुलक्कड़पन की बात जान कर इस अफलातून की बेटी ने अवश्य ही फायदा उठाया है, लेकिन मेरा भुलक्कड़पन मुझे इस बात पर भी दृढ़ नहीं होने देता इसलिए विवश हूं और यह अफ़लातून की बेटी आजकल भी मीरा बनी हुई है.

●●

प्यास एक : रूप दो

झुटपुटे का समय था, उस दिन भी मैं बंगले के दरवाजे पर खड़ा होकर सड़क से मन बहला रहा था, अनमने होने पर सड़क मन बहलाव का अच्छा साधन होती है। मैं आने जाने वालों का मनोविश्लेषण करने का प्रयत्न कर ही रहा था कि सहसा सामने के नीचे, कच्चे से मकानों में रहने वाले अहीरों के बच्चों ने शोर मचाया : 'बंदर वाला ।' बच्चों की आवाज सुनकर मेरा भी ध्यान उधर गया पर मुझे दूर तक कुछ स्पष्ट दिखायी न दिया। लेकिन जब वह पास आ गया तो मैंने गौर किया। देखते देखते ही मैं सहसा दो कदम आगे बढ़ गया और बोल पड़ा : "अरे, रामू ! तुम !"

"ओह, बाबू जी ! आप हैं !" विस्मय से आँखें

फाड़ कर देखते ही उसने कहा . धुंधलके के धुंधले प्रकाश में भी मुझे उसके चेहरे पर लापरवाही से बढ़ी हुई हल्की दाढ़ी में दबी दबी व्यथा दीख रही थी, और उसमें घुले मिले विस्मय के चिह्न भी मैंने पहचान लिया।

"चलो, अन्दर चलो," मैंने कहा और उसके बन्दर, बन्दरिया और उसके छोटे बच्चे पर जो उसके कंधे से उतर कर मेरी तरफ बढ़ रहा था, प्रश्नसूचक नजर डाली। लाल छींट के कपड़े सबको पहनाये गये थे। उनका असली रङ्ग या तो मैल से या पुराने होने के कारण बदला हुआ था। बन्दर और बच्चे के कपड़े तो सिर्फ कमर और टांगों को ही ढकने योग्य थे। बन्दरिया को एक ब्लाउज जैसी चीज और पहनायी गयी थी। उन पर कहीं कहीं पैंबन्दों को देखकर मैंने सोचा कि मनुष्य की निर्धनता का शिकार उस पर आधारित इन निरीह जानवरों को भी होना पड़ता है।

रामू मेरी दृष्टि को भांप चुका था, बोला : 'सरकार, पेट पालने का धन्धा है। नौकरी एक तो मिलती नहीं, दूसरे नौकरी करने को अब जी भी नहीं चाहता। सब तरह की बातें सुननी पड़ती हैं, सहना पडता है। सहने की बान नहीं है। सरकार, इससे बड़ी मुश्किल पड़ती है ..." वह जैसे दम लेने को रुका हो।

मैंने टोक कर कहा : "चलो अन्दर चलो।"

रामू अन्दर बढ़ आया। पीछे पीछे उसके 'उदरपोषक' भी चल पडे। मैंने एक नजर सड़क पर डाली और उन बन्दरों की हरकतें देखता हुआ बोला, 'नौकरी कब से नहीं की तुमने ?"

"आपकी नौकरी मेरी पहली और आखिरी नौकरी थी," उसने कुछ साहित्यिक सी भाषा में कहा। उसके स्वर से स्वाभिमान टपक रहा था।

"क्या तब से यही कर रहे हो ?" उसे हमारे यहां से गये हुए छह साल हो चुके थे।

'नहीं, वहां से गांव चला गया था। कुछ दिन साझे में खेती

की थी, जमीन और हल बैल दूसरे के थे, मैं काम करता था। फिर उससे झगड़ा हो गया, साझे में तो हो ही जाया करता है, उसके बाद पास के एक कस्बे में गया। वहाँ दो साल पान सिगरेट की दूकान चलायी और अब यहां आकर यह काम कर रहा हूँ। तीन महीने हो गये हैं।"

वह बड़ी साफ भाषा में बोल रहा था। उसमें एक आश्चर्यजनक परिवर्त्तन आ गया था। पहले तो वह बातें करते हुए झिझका करता था। अब वह बातें बनाना भी सीख गया था।

"दूकान क्यों छोड़ दी थी ?" बरामदे की सीढ़ियाँ चढ़ते हुए मैंने पूछा।

"सरकार तकदीर ही खराब है, अपनी। कुछ तो तजुरबा नहीं होने से नुकसान हो गया। फिर चोरी हो गयी। पड़ोस के ही लोगों का काम था, लेकिन हो क्या सकता था, लड़ा तो जा नहीं सकता था। बस, सब्र करके यहाँ चला आया।" उसकी दबी व्यथा जैसे फूट पड़ रही थी। ऊपर से लापरवाही भरी प्रसन्नता लिये वह व्यक्ति भीतर इतनी गहरी व्यथा लिये हुए होगा। मैंने कभी सोचा ही नहीं था। मैंने उसकी ओर गौर से देखा। लगता था जैसे वह रो पड़ेगा। मैं बात बदलने की सोच ही रहा था कि मुझे ध्यान आया कि अब तक हम लोग खड़े हुये ही थे। मैंने कहा।"

"रामू, बैठ जाओ।"

वह संगमर्मर से स्वच्छ सफेद पत्थर जैसे टाइल के फर्श को एक बार देख कर बैठ गया। मैंने फिर कहा, "रामू, तुमने शादी तो कर ली होगी ?"

'गांव जाने पर तुरन्त ही शादी कर ली थी। बाप के मरने की खबर आपके यहां ही मिली थी। इसके अलावा और चारा ही न था शादी में मिले हुए रुपयों से ही तो पान सिगरेट की दूकान खोली थी। अब तो आपकी दुआ से दो बच्चे भी हैं। उसे तो जैसे

धारावाहिक बोलने का अभ्यास हो गया था। मैं उसकी इस क्षमता पर आश्चर्य किये बिना न रहा।

"इस धन्धे से कितनी आमदनी हो जाती है ?" मैंने पूछना चाहा। फिर इस विचार से ठिठक गया कि किसी की आमदनी पूछना सभ्य व्यवहार नहीं कहा जा सकता, लेकिन फिर सोचा, रामू कोई गैर नहीं है और मैंने पूछ ही लिया। वह उत्तर में निःसंकोच जेब से पैसे निकाल कर गिनने लगा। मैंने देखा, उसमें अधिकतर पैसे ही थे और एक आने से बड़ा कोई सिक्का न था। उसने गिनकर बताया—दो रुपये तीन आने।

मैंने फिर पूछा, "क्या रोज ही इतने मिल जाते हैं ?"

अपने इस प्रश्न पर बाद में मैं स्वयं लज्जित हुआ। कितना अशिष्ट ढङ्ग था इसका ! जैसे दो रुपये तीन आने रोज मिलना बहुत ज्यादा हों जब कि मुझे लगभग पन्द्रह रुपये रोज पड़ते थे।

"जी नहीं, कभी कभी तो एक रुपया भी नहीं मिल पाता। कभी तीन रुपये भी हो जाते हैं।"

मैं चुप रहा और यकायक कुछ याद करके पीछे की ओर देखा श्रीमती जी खड़ी हुई थी, बन्दरों को देखकर उन्हें हंसी आ रही थी।

मैं उसे बोला, "रेणु, देखो, रामू आया है।" मैं जानता था कि यह कहने की कोई जरूरत नहीं है, आखिर रेणु के पास भी तो आखें हैं। वह रामू को मुझ से ज्यादा ही पहचानती हैं। लेकिन बस, कहना था, सो कह दिया। 'बिन्नी और रंजन को बुला लो, रामू तमाशा दिखायेगा।'

रेणु चली गयी। बिन्नी और रंजन तमाशा देखने के लिए तुरन्त दौड़ कर आये। रामू ने अपना डमरू संभाला और अपने उदरपोषकों को तैयार कर इधर उधर घुमाने लगा। डमरू की 'खड़ खड़' शुरू हो गयी और मेरी स्मृतियों का तार जुड़ गया। मैं रामू को देखता रहा, उसके बन्दरों को देखता रहा और सोचता रहा—तब की बात जब

मेरा ट्रांसफर रानी खेत को हो गया था। मैं मैदान की हलचल से ऊब चुका था। भला कानपुर भी कोई जगह है। और फिर मरे जैसे आदमी के लिये तो बिल्कुल बेकार! मुझे तो एकान्त से कुछ ज्यादा ही मुहब्बत है। मिलों का अजब सा दबा दबा सा शोर, धुएं की घुटन भरी हवा–भला कहीं दिलचस्प हो सकते हैं। बिना कारण ही साम्यवादी बन कर मजदूर और मिलों की कहानियां लिखे जाओ। बस, इस से आगे यहां कुछ मुमकिन ही नहीं है। रानी खेत का ट्रांसफर इन सब बातों को देखकर मुझे स्वर्ग के राज्य से कम न लगा था। बस, एक परेशानी बढ़ गयी थी। वहां दूर पर जाना पड़ेगा! महीने में बीस दिन बाहर, ज्यादा भी हो सकता है। रेणु तो बहुत घबराई थी। उसने तो ट्रांसफर रद्द करवाने की भी सलाह दी थी। उस पर जोर भी डाला था। पर मैं नहीं घबराया था। सोचा था, इस बहाने पहाड़ी बस्ती का घूमना ही होगा और न जाने कब की अपनी एक साध पूरी हो जायेगी। फलतः हम रानी खेत चले ही गये।

दौरे पर अधिक रहना पड़ता था। कोठी प्रायः अकेले में थी। फिर जगह भी नयी थी। एक नौकर जो हर वक्त वहीं रहे, रखना ठीक समझा था। फलतः यही रामू हमारे यहां नौकर बन कर आया था। उन दिनों रामसिंह नया जवान था, कसरती नया शरीर, भीगी हुई मसें, निखरा हुआ पहाड़ी रङ्ग अच्छा लगता था।

नये नौकर के साथ कुछ समय तक होने वाली स्वाभाविक परेशानी के बाद रामसिंह काम लेने योग्य बन सका। पहले तो अक्सर उस पर गुस्सा आता। रेणु भी झल्ला जाती। निकालने तक की बात करती, पर उसकी भोली और नादान सूरत देखकर चुप होना ही पड़ता था। लेकिन जैसे जैसे रामसिंह, रामू बना, वैसे वैसे उसकी अक्ल तेज होती गयी। वह सब कुछ सीखने लगा, और वह पुरानी पत्नी की तरह आरामदेह हो गया।

डुगडुगी की आवाज वैसी ही हो रही थी। बन्दर वाला–रामू

बड़ा दत्तचित्त होकर बिन्नी और रंजन को संतुष्ट करने में लगा था। वे भी बड़ी एकाग्रता से उन बन्दरों का खेल देख रहे थे। नन्हीं बिन्नी तो रह रह कर खड़ी होकर बन्दरिया की तरह अनजाने ही नाचने भी लगी थी। मैं उसे देखकर हंसे बिना न रह सका। लेकिन जैसे हंसी, मुस्कराहट में बदली और फिर मुस्कराहट से खुशी में रह गयी, वैसे वैसे मैं फिर रानी खेत पहुँच गया।

सब ठीक चलने लगता था। अक्सर दौरे पर ही रहता था। कभी कभी तो कई महीने बाहर रहना पड़ता था। बड़ी सी अकेली कोठी में बेचारी रेणु और रामू के सिवा कोई न रहता था। वह अक्सर शिकायत किया करती थी कि क्या नौकर है, यह भी ? वह अकेले रहती रहती ऊब जाती होगी, यह मैं समझता था। लेकिन करता क्या ? कोई और चारा भी तो न था। नौकरी कैसे छोड़ देता।

एक बार दो महीने बाद लौटा था। उस दिन जो देखा, यदि न देखता तो ही अच्छा था। मैं अकस्मात ही बिना पूर्व सूचना के आ पहुंचा था। सीधा ही रेणु के कमरे में आया। एक क्षण खड़ा रहा। धरती कुछ घूमती सी नजर आई। मुंह से सहसा ही कोई शब्द न निकला और कमरे से चला आया। बाहर आकर बिना वजह बड़े तेज कदमों से बरामदे के अनगिनत चक्कर लगाये। हाथ की सिगरेट को मुंह तक लाया। फिर उसके कई टुकड़े कर डाले और फिर बरामदे मे फेंक दिये। उन्हें बड़ी देर तक जूते से मसलता रहा। जब इसका पूरी तरह चूरा बन गया तब दूसरी नयी सिगरेट निकाली और उसे बिना जलाये ही तोड़ कर मसल डाला। इस तरह जब सिगरेट केस खाली हो गया, मेरे अंतर्द्वन्द से उलझने के लिये उसमें कोई भी सिगरेट नहीं रही, तब उसे लापरवाही से दूर लॉन में फेंक दिया। फिर बड़ी तेजी से अपने कमरे में घुस कर धप्प से कुर्सी में धंस गया। पाँच मिनट तक छत की कड़ियां गिनने की कोशिश करने पर भी सफल न होकर कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और बहुत जोर से रामू को आवाज दी। जब तक रामू

आये तब तक मेंटलपीस पर रखे रेणु और अपने चित्र के सामने थोड़ी देर खड़ा रहा । फिर उसे पटक कर उसका शीशा तोड़ डाला और उसमें से अपना और रेणु का चित्र अलग कर लिया फिर रेणु के चित्र के टुकड़े कर दिये । तभी रेणु आ गयी । रामू नहीं आया ।

"अरे, कब आये ?" रेणु ने कहा ।

मैंने कोई उत्तर न दिया । बस, एक बार उसे देखा और उसके चेहरे का अध्ययन करने लगा । वह पूर्णतः प्रकृतिस्थ लग रही थी । मैंने कुछ कहना चाहा लेकिन न जाने क्यों मुंह से कुछ न निकल सका और एक बार और उसे देखकर अपनी नजर हटा ली ।

उसने फिर कहा, "क्या बात है ? कुछ खोये खोये से नजर आ रहे हो ?"

मैंने बिना उसे देखे ही, उसकी बात पर ध्यान न देते हुए कहा, "पानी ।"

"अच्छा, लेकिन बात क्या है ?"

"एक गिलास पानी !"

रेणु कुछ समझ न सकने के कारण झल्लाई हुई सी चली गयी, थोड़ी देर बाद वह पानी लेकर लौटी, वह कुछ कहे इससे पहले ही मैंने कहा, "रामू कहां है ?"

"यहीं है, आप कुछ परेशान नजर आते हैं । आखिर कुछ तो बताइये ।"

"जाओ, रामू को भेज दो ।"

वह फिर झल्लाई और अन्दर चली गयी । थोड़ी देर बाद रामू आया । वह उदास लग रहा था मैंने उसे गौर से देखा । मुझे उसके चेहरे पर घबराहट के चिन्ह दिखाई दिये ।

रामू का डमरू तेजी से बज रहा था । शायद उसका स्वर सीमा पर पहुँच चुका था । नृत्य में बहुत अधिक तेजी आ गयी थी ।

मेरी कहानी की भी चरम सीमा आ गयी थी । विचार प्रवाह भी तेज हो गया ।

बिना किसी भूमिका के मैंने उससे तेज स्वर में कहा, "तुम" तुम अभी, इसी वक्त निकल जाओ ।" मैं अपना स्वर अब तक संयत नहीं कर पाया था । "तुम्हें शरम नहीं आती" "तुम्हारी यह मजाल ", आदि न जाने क्या क्या मैं कह गया था ।

रामू हक्का बक्का सा लगता था । ऐसा बन रहा था जैसे कुछ न जानता हो । उसने अटकते हुए पूछा, "मुझसे क्या कसूर हो गया सरकार ?"

लेकिन उसकी बात पूरी होते, मैं फिर गरज पड़ा था, "बदमाश, कसूर पूछता है ? बकवास की तो पुलिस में दे दूँगा । जैसे मैंने देखा ही न हो" "यह बात" "अभी अभी कमरे में क्या था ? इतनी मजाल तेरी..." और गुस्से से मैंने अपना होठ दबा लिया ।

मैं बुरी तरह काँप गया था ।

"सरकार मैं...मैं तो..." लेकिन पूरी बात कहने की उसकी हिम्मत हुई थी पता नहीं, मेरे गुस्से को देखकर या अपने कसूर की सच्चाई के कारण ।

मैंने कहा,

"अच्छा, बकवास बन्द कर । मुझे कुछ नही सुनना यहां से फौरन भाग जा "फौरन "

और नौकरों की तरह उसने कोई मिन्नत खुशामद नहीं की । इससे उसके कसूर की सच्चाई साफ जाहिर होती थी । वह तुरन्त ही चला गया ।

...खेल खत्म हो गया था । वह सामान बटोर चुका था । जाने के लिए मुझ से इजाजत ले रहा था । बिन्नी और रंजन उसके 'उदरपोषकों'

को ही देख रहे थे। मैंने अपने विचारों के बहाव से अलग होकर कहा, 'रुको," और पर्स में से एक रुपये का नोट निकाल कर उसकी ओर बढा दिया।

एक क्षण तो उसके हाथ आगे बढ़े नहीं फिर कुछ ठिठकते हुए हाथ बढ़ाए और एक बार मेरी ओर देखकर उसने नोट ले लिया। खेल खत्म होना सुनकर रेणु भी आ गयी। मेरी ओर देखकर बोली, "कल अपनी मेहरीयाँ को लाना और बच्चे को भी। जरूर।"

रामू ने बिना उसकी तरफ देखे ही, बिना उधर घूमे ही उत्तर मे सिर हिला दिया। "अभी जरा, ठहरो।" कहकर रेणु अन्दर गयी और कुछ खाने का सामान लेकर वापस आयी। वह सामान भी रामू ने बिना देखे ही ले लिया। फिर उठ खड़ा हुआ, और अभिवादन करके चल दिया। जाते जाते कल फिर आने का अनुरोध मैंने भी कर दिया।

रामू के जाने के बाद भी उसके बारे में सोचना बन्द न कर सका। रेणु ने खाने को बुलवाया। लेकिन जाने की इच्छा न हुई। मना कर दिया। वह स्वयं आयी। पूछा, "क्या बात है? तबियत तो ठीक है, न।"

बिना वजह बात बढ़ जाती इस लिए उसके साथ चल दिया। लेकिन उसकी संतुष्टि न हुई और माथा उसने देखा। मैंने कहा, "बाबा, ठीक तो हूं। तुम तो बेकार वहम करती हो!"

खाना खाते खाते भी विचार वहीं थमे रहे। आज एकाएक रामू को देखकर न जाने कैसा लग रहा था। कुछ अभिन्नता सी लग रही थी। जैसे अपना कोई सगा मिला हो। बरसों बाद। साथ ही सोचता, मैंने उसके साथ ज्यादती की थी, लगता जैसे वह निर्दोष था, लेकिन मैंने तो अपनी आंखों से देखा था·· फिर यह न मानने को सहसा मन भी न करता था। यह दूसरी बात थी कि मैंने उसे अब क्षमा कर दिया था। रेणु को भी क्षमा कर दिया था। उस घटना के बाद उस पर

मैंने बहुत विचार किया था। एक अन्वेषक की तरह उसके कारणों और परिस्थितियों का मनन किया था। अपराधी होने पर भी दोनों क्षमा के अधिकारी थे। यही निष्कर्ष निकाला था…'

"खाना नहीं खा रहे हैं, आप ? खाली प्लेट रखे ही बैठे रहेंगे क्या ?" और यह कह रेणु ने एक रोटी मेरी प्लेट में डाल दी।

रेणु काम से निपट चुकी थी। रोज की तरह से उसने रेडियो को पहले "फुल वाल्यूम" तक खोला। फिर बिल्कुल धीमा कर दिया, फिर धीरे धीरे बढ़ाया और फिर एक ऐसी स्थिति पर कर दिया जो न फुल थी और न धीमी। मुझे उसकी इस रोज की आदत पर हमेशा की तरह हंसी आ गई। मैंने उसकी ओर देखा। लेकिन इस देखने मे कुछ खालीपन था जैसे देखना जरूरी समझ कर देखा हो। वह हमेशा की तरह बच्चों की सी हंसी हंसी। फिर बिल्कुल निकट सौफे पर आ बैठी।

लेकिन मैंने आज उसे "चलो हटो भी" कहने का मौका नही दिया। रेणु कुछ देर मेरे कुछ कहने या करने की प्रतीक्षा करती रही। फिर कुछ उदास सी उठकर चली गयी। उसकी आँखों में सहसा ही एक अजीब सी प्यास आ गयी, एक अभाव सा उसे लगा। मैं सब जानकर भी कुछ न बोला। और उस प्यास और अभाव में ही उलझने लगा।

यही प्यास तो तब भी थी, यही अभाव तो तब भी था। मुझे सहसा ही बृहदारण्यक उपनिषद का वह सूत्र याद आया जिसमें मानव जीवन की तीन चाह दी गयी हैं। इस सूत्र में सबसे पहले जो आती है वही यहां भी थी। वही प्यास अब भी थी, और उन दिनों भी रही होगी। मैं महीने महीने पर बाहर रहता था। इतनी बड़ी कोठी में अकेली रेणु ही रहती थी। कोई छोटा बच्चा तक न था, मन बहलाने को बस जो कुछ था वह रामू था, नौकर भी, साथी भी, सब वही था।

ऐसी हालत में यदि रामू के साथ इतना अधिक सम्बन्ध बढ़ जाये तो स्वाभाविक ही था। इसका दोष रेणु पर थोपा नहीं जाना चाहिए। इसका उत्तरदायी यदि कोई है तो मैं। और रामू? रामू तो उन दिनों चढ़ती उम्र का युवक था। चढ़ती उम्र की बात आते ही मुझे अपने वे दिन याद आ जाते हैं। मैं अरहर के उन्हीं खेतों में पहुँच जाता हूँ जहा कालिज की छुट्टियों का ज्यादा वक्त कटता था और भी जाने क्या क्या होता था वहां तब ?

रेणु जिस स्थिति में थी उन दिनों जैसी प्यास थी उसकी, जो अभाव था उसे, अब मैं सब जान गया हूँ। ठंडे दिल से इस पर मैंने विचार किया है। उन दिनों की अपनी स्टेनोग्राफर मिस रेम्जी की भी याद आयी है। रेम्जी को बार बार बुलाना, आवश्यक अनावश्यक कितने ही पत्र उसे डिक्टेट कराना, बोलते समय उसे ही देखते रहना, उसे "यस सर" और "फर्दर सर" कहने पर अनर्गल शब्द कह जाना, क्या इसकी प्रतिक्रिया मैं नहीं हुआ था? इसके विषय में रेणु तो शिकायत नहीं करती, फिर...और अपने साथी नागेश की बातों की याद भी तुरन्त आ जाती है। नागेश भी विवाहित था। उसकी पत्नी भी सुन्दर होगी शायद रेणु जैसी ही हो। लेकिन एक पहाड़ी लड़की उसके साथ रहती थी, और जब उस बाजार में जाने वालों के विषय में सोचता हूं जो तब खुलता है जब दिये जल जाते हैं और जो रात भर खुला रहता है। तब फिर रेणु का अपराध क्षमा योग्य लगने लगता है। केवल पुरुष को ही वह अधिकार क्यों हो?

एक दूसरा कारण भी रेणु के पक्ष में आता है। वह अकेली रहती थी। कोई तो उससे बातें करने, हंसने खेलने को चाहिये। रेणु की अभावभरी दृष्टि तब रामू पर ही जाकर अटकती होगी। वह वहीं तक तो सीमित थी। और जो साथ रहे, पास रहे, उससे सम्बन्ध बन जाना स्वभाविक ही है। यह सम्बन्ध कहां तक बढ़े, यह अलग बात है। यह परिस्थिति और मानसिक क्षमता पर निर्भर है। इसकी एक

सीमा, यह भी हो सकती थी और जो इन परिस्थितियों में बहुत स्वाभाविक थी।

तब तक हमारे कोई संतान न हुई थी। विवाह हुए तीन वर्ष बीत चुके थे। यहां फिर मुझे वही सूत्र याद आ जाता है।

स्वयं अपने को इस स्थिति में रखकर मैंने उन दोनों को क्षमा कर दिया था। इसी कारण तो रामू को एकाएक देखकर बुला लिया था। एक सोया हुआ सा परिचय जाग उठा था। सहसा ही उसे देखकर। अब सोचता हूं-यदि क्षमा न किया होता, इतना सब न सोचा होता, तो हमारा पारिवारिक जीवन कभी इतना सुखी न हो पाता और अनावश्यक कलह हुआ करती। मैंने उक्त घटना के बारे में कभी रेणु से बात नहीं की थी। उसने एकाएक रामू को निकालने का कारण भी पूछा था। लेकिन मैंने कुछ ठीक उत्तर न दिया था। पहले तो क्रोध के कारण कुछ न बोला था। फिर बहाना कर दिया।

इस बीच रेणु कई बार कमरे में आयी थी। मुझे सुस्त सा, खोया खोया सा देख कर, कुछ कहने को भी हुई थी। फिर चली गयी थी। मैंने इसे लक्ष्य तो किया पर ध्यान न दिया। अब रेणु से बात करने की इच्छा हो रही थी। शायद वह मेरे अनमने रहने से नाराज हो गयी हो।

मैं उठकर रेडियो के पास गया और जान बूझकर उसकी आवाज एक दम तेज कर दी। रेडियो गूंज उठा। और गूंजता रहा लेकिन रेणु नहीं आयी। फिर रेणु की तरह उसे बिल्कुल धीमा कर दिया। और फिर धीरे-धीरे बढ़ाया और एक ऐसी स्थिति पर कर दिया जो न धीमी थी और न तेज लेकिन रेणु फिर भी न आयी फिर मैंने उसे एकदम बन्द कर दिया। और थोड़ी देर कमरे के चक्कर लगाने के बाद रेणु के कमरे में जाने ही वाला था कि वह आ गयी। उसके हाथ में एक कागज था और उसके पीछे एक गन्दे से कपड़े पहने अधमैला सा बालक था। आते ही रेणु ने कहा, "लो, यह तुम्हारे नाम चिट्ठी है।"

और वह चिट्ठी कहा जाने वाला मुड़ा हुआ कागज मुझे पकड़ा दिया।

यह कागज आटे से चिपका कर बंद भी किया गया था। उसके एक तरफ लिखा था—चौखुंटे से बेढंगे अक्षरों में–बाबू जी को मिले। मैंने उस लिफाफे नुमा पत्र को खोला जो अंतर्देशीय की नकल करके बनाया गया था। भले ही वह भेजने वाले की मौलिक सूझ हो। वैसे ही बेढगे अक्षरों में नीचे लिखा हुआ था, "भेजने वाला, रामसिंह।"

रामू का नाम देखकर पत्र में उत्सुकता अधिक बढ़ी और एक ही सांस में पढ़ गया। भाषा और व्याकरण के नये प्रयोगों से कुछ अड़चन तो हुई लेकिन मतलब निकाल ही लिया। वह यह था :

बाबू जी,

आज बहुत दिनों बाद आपको देखकर सब बातें याद आ गयी। छ साल पुरानी सारी कहानी आंखों के सामने घूम गई। मैं उस बात को सोच कर कितनी ग्लानि अनुभव कर रहा हूँ। यह मैं ही जानता हूँ। इसी कारण मैं आपके सामने नहीं आना चाहता था।

मैं विश्वास के योग्य प्राणी नहीं हूं यह बात मुझे दुःख देती रही है। उस दिन की उस घटना के बारे में मुझे कुछ जरूर कहना है। क्योंकि वही इस सबका कारण है। आपने उस दिन मुझे बहू जी की बाहों मे देखा था और यही आपके क्रोध का कारण था। यह बात मैं उस दिन तो नहीं समझ पाया था, पर अब ठीक जान गया हूँ। यदि तभी जान जाता तो शायद सब बात तभी साफ हो जाती

आपको शायद याद हो कि मेरी मां बचपन में ही मर गई थी। उन दिनों बहू जी के साथ हरदम रहने से उन्हें मुझ से स्नेह हो गया था। मुझे भी वह बहुत अच्छी लगी थी। बाद में भी अक्सर उनकी याद मुझे आती रही। मुझे मां के प्यार का तो परिचय ही नहीं। फिर मैं सोचता हूँ कि वह भी कुछ कुछ बहू जी के स्नेह जैसा ही होता होगा।

उस दिन मेरे पिता जी के देहान्त की खबर लगी थी। आपके

आने से आध घंटा पहले ही एक गांव का आदमी बता गया था। उनके मरने से मैं अकेला रह गया था। फिर मां न होने से मेरे बापू ने मुझे बहुत प्यार किया था उनके मरने से मैं पागल हो जाता तो भी कम ही था.. मुझे बहुत ज्यादा विकल देखकर बहूजी मुझे सांत्वना दे रही थीं। और इसी से उन्होंने मुझे जमीन से उठा कर मेरी पीठ थपथपाई थी।

यही वह क्षण था जब आप आ गये होंगे।

इस दशा में आपने जो अनुमान लगाया मैं उसको दोष नहीं दे रहा। ऐसा स्वाभाविक ही था।

बेकसूर होने पर भी मैंने उस समय इस बात को साफ करने का प्रयत्न इसलिए नहीं किया कि एक तो, तब एकाएक मेरी समझ में आपके क्रोध का कारण ही नही आया था और दूसरे, पिता जी की मृत्यु से मैं इतना दुःखी था कि कुछ कह नहीं पा रहा था।

हो सकता है, आपको यह सब बातें बहूजी ने बता दी हों लेकिन फिर भी मैं उन्हें बता देना चाहता हूँ। बाबू जी, मुझे अपना विश्वास वापस मिल जाये, यही एक इच्छा है।

आपने और बहूजी ने मुझे और मेरे बच्चों को बुलाया था, इसके लिए मैं माफी चाहता हूं। मुझ में अब भी इतनी हिम्मत नहीं है कि आपके सामने आ सकूँ। बहू जी से मेरा प्रणाम कहियेगा।

बस, आप लोग सुखी रहें, यही चाहता हूँ।

कागज मोड़ कर दूसरी ओर लिखा था, "खत लाने वाला मेरा बड़ा लड़का बच्चन है। इतनी रात को खत भेज कर आपको परेशान कर रहा हूँ सो क्षमा कर दीजियेगा। लेकिन मैं सबेरे तक रुक न सकता था। इसलिए और कोई चारा न था।"

पत्र पढ़कर मैं कुछ देर स्तब्ध रह गया।

"किसका पत्र है ?" रेणु ने पूछा।

"रामू का।"

"क्या बात थी इतनी रात को खत लिखने की ?"

"कुछ खास नहीं। बस कल न आ सकने के बारे में लिखा है... देखो, यह रामू का लड़का है।"

रेणु सहसा मुस्कराई। फिर रामू के लड़के को देखा। उसे लेकर जाने लगी। मैंने कहा, "हाँ, इसे कुछ खिला पिला दो।" फिर मैंने उस लड़के से कहा, "तुम्हारा नाम बच्चन है ?"

"हाँ।"

"बच्चन, तुम अपने बाबू से कहना कि हमने कहा है कि वह जरूर आये। हम उसे बुला रहे थे। जरूर आये।"

और अधिक मैं कह भी नहीं सकता था। रेणु भी सामने थी। उसे सारा किस्सा बता कर सब कुछ बिगाड़ना ठीक न होता।

बच्चन रेणु के पीछे चला गया और मैं उसे और उसके शरीर में रामू को देखता रहा। वह अटपटी चिट्ठी फाड़ कर टुकड़े टुकड़े कर दी।

अगले दिन रामू नहीं आया। वह कभी नहीं आया। डमरू की आवाज कभी सुनायी न दी। मेरी आंखें हर शाम उसे उस सड़क पर ढूंढती रहती हैं, लेकिन वह कभी दिखायी नहीं दिया। और शायद कभी मिल भी न पायेगा।

अब सोचता हूँ कि जैसे मैंने सैंकड़ों अपराध कर डाले हों!

●●

दिल्ली और आगरे की प्रभुता के मद में डूबा
आगरे के किले में रङ्गरेलियां कर रहा था।
क्रूरतापूर्ण रक्तपात और परिश्रम से हाथ आये
को बेतहाशा उपभोग करने के लिये वह सिर
व तक साकी और शराब में डूब गया था।
म का कार्य करने के बाद विश्रांति तथा आमोद
त्रक भी होता है फिर शराब तो बहिश्त का
समझी जाती है और इसे तो मजहब ने भी
किया है। साकी थी गुलाब, हूर-हुस्न
री। उसका सौन्दर्य अप्रतिम था, उसके अङ्ग
में लोच था और एक आकर्षक उतार-चढ़ाव था,
स्वर में। उसकी एक एक अदा पर शहन्शाह
ठता था। सोने की कीमती सुराही को बड़ी

नजाकत से उठाये शोखी भरे अन्दाज में वह शहन्शाह के सामने घुटनो के बल बैठ कर जाम भर देती थी और शहन्शाह अपनी प्यासी आंखें उसके चांद से चेहरे पर गड़ा देता था। गुलाब बाबर की इस प्यास को समझती थी। और इसका कारण भी जानती थी, इसलिए कभी लहमे भर को आंख ऊपर उठा लेती थी। आंखें मिलते ही एक शरमाई मुस्कराहट उसके अधरों पर आ जाती थी और शहन्शाह निहाल हो जाते थे।

बहिश्त जैसी रङ्गीनी में डूबा बाबर एक दिन गुलाब के चेहरे पर आँखें गड़ाते हुए बोला, "गुलाब अगर तू न हुई होती तो शायद मेरी यह जीत नहीं हो सकती थी। तेरी रफाकत का अहसास मुझे मैदाने-जङ्ग में अजीब सा जोश दिलाता रहता था। तेरी नीम–बाज आखें......"

लज्जा से सिर झुका कर बीच में ही गुलाब ने कहा, "बस, बस, जहापनाह नाचीज किस काबिल है! आपके लबों से ज्यादा तारीफ़ कहीं इसका होश न बिगाड़ दे।" और बाबर के खाली जाम को भरने लगी।

बाबर ने रोकते हुए कहा, "बस, अब रहने दे। आज इस बेजान शराब की मस्ती की जरूरत नहीं रह गयी है, आज तो इन खूबसूरत आखों की मस्ती ही काफी है। आज तो अपने मये-इश्क से लबरेज प्यालों को ही खाली करने से हमें फ़ुरसत हासिल होती नहीं दीख रही। सच, गुलाब, खुदापाक की कसम, तेरी वजह से ही मॉबदौलत आज इस कदर खुशी के आलम में डूब सके हैं।"

"नाचीज़ इतनी भारी इज्जतबख्शी के लिये शहन्शाह की ताउम्र शुक्र-गुजार रहेगी।"

शहन्शाह पर नशा चढ़ रहा था और नशे में खुशी कई गुनी हो जाती है। झूम कर बोला, "आज शहन्शाह को बेहद खुशी है। आज इस सोने की बुलबुल-हिन्द के तख्त पर बाबर का सिक्का जम चुका है। अब हम यहीं रहेंगे।"

यह सुन कर गुलाब जैसे आसमान से गिरी। बीच में ही बोल पड़ी, "......गुस्ताखी माफ़ हो, यह आप क्या कह रहे हैं ? सिपहसालारे-आजम, उस्तादअली तो कह रहे थे कि अब हम लोग जल्द ही इस निहायत गर्म मुल्क से अपने प्यारे काबुल की तरफ रुख करेंगे। अपने वतन के खूबसूरत मंजर हर वक्त मेरी आंखों के सामने घूमते रहते हैं। सोच रही थी कि अब तो जल्द ही फिर उनका दीदार हो सकेगा। यह हिन्दोस्तां तो भट्टी की मानिन्द तपता है। यहां तो..." और वह कहते कहते चुप हो गयी। उसने देखा कि बाबर उसकी बातों पर कोई ध्यान नहीं दे रहा है और उसके चेहरे पर एक खौफनाक संजीदगी की पर्त चढ़ती जा रही है। गंभीर होने पर बाबर उसे बड़ा भयावना मालूम देने लगता था, इसलिए घबराकर वह चुप हो गयी और निगाहें धरती पर गड़ा लीं।

गम्भीर और दबंग आवाज में बाबर बोला, "अब हिन्द से वापस लौटना नामुमकिन है। अब तो इस आगरे में ही हमारी दारुल-सल्तनत बनेगी। हां, तो, गुलाब..."बाबर ने अपने स्वर में पहले की सी मस्ती लाते हुए कहना शुरू किया, "आज माबदौलत बेहद खुश हैं। तू अपनी तबीयत का तोफा मांग ले। आज शहन्शाह के हुजूर से बेशकीमती चीज भी तेरी मुराद पूरी करने के लिए हाजिर हैं।"

गुलाब ने सुना और सुनकर भी चुप ही रही। बस, उसने भोली अदा से उठ कर सिर झुका कर कदमबोशी की और आगे बढ़ कर शहन्शाह का हाथ चूम लिया।

कोई कुछ कहे इससे पहले ही एक लौंडी ने आकर सलाम झुकाया और अर्ज किया, "शहन्शाह आलम, कासिद एक जरूरी खबर लाया है। हुक्म हो तो हाजिर करूं !"

बाबर ने इशारे से स्वीकृति दी फिर गुलाब की तरफ देखा।

वह स्तब्ध सी खड़ी थी। बाबर ने मुस्करा कर कहा, "क्या बात है ?"

उत्तर में गुलाब मुस्करा भर दी।

"तूने अपनी माँग पेश नहीं की।" बाबर ने कहा।

"मुझे कुछ नही चाहिये, जहाँपनाह। जो अब तक आपने दिया है, वही क्या कम है?"

"नहीं, हम चाहते हैं, तू आज कुछ जरूर मांगे।"

"अभी तो मुझे कुछ नहीं चाहिये, जब जरूरत होगी, तब माग लूंगी।"

इसी समय कासिद अन्दर आया और सलाम करके बोला, "शहन्शाह-आलम करीबन एक लाख फौज लेकर राना सांगा सीकरी की तरफ से यहीं आ रहा है। उसके साथ इब्राहीम लोदी का दूसरा बेटा महमूद भी है। अन्दाज किया जाता है कि ज्यादा से ज्यादा चार रोज में ये लोग खानवाह तक पहुँच जायेंगे।"

बाबर के सामने से पर्दा हट गया था। उसका नशा काफूर हो गया और उसकी सारी रङ्गीनी पलक मारते ही रुखसत हो गयी। उसने अपनी सारी उम्र ही लड़ाई में बितायी थी। वह इस खबर से घबराने वाला नहीं था। कासिद से उसने पूछा, "सीकरी यहाँ से कितनी दूर हैं?"

"कुल २६ मील, जहांपनाह।"

"हूं" बाबर ने कहा। फिर कुछ देर रुक कर बोला, "उस्ताद अली को हाजिर किया जाये।

बाबर के सिपाहियों में इस समाचार से बड़ी बेचैनी फैल गयी। वे स्वदेश लौटने की आशा लगाये बैठे थे, युद्ध की बात सुन कर उनके हौसले पस्त हो गये। स्वदेश से इतने दिन दूर रहने के कारण वे पहले ही काफी हतोत्साहित हो रहे थे। इतनी बड़ी लड़ाई के बाद वे आगे लड़ाई से ऊब चुके थे, लेकिन शहन्शाह का हुक्म और समय की पुकार दोनों ही इतनी प्रभावपूर्ण थीं कि इनके सामने सिर झुकाना ही पड़ता। उन्हें तैयार होना पड़ा। बाबर ने आज्ञा दी कि राना की सेना को

सीकरी से आगे बढ़ने न दिया जाये। इसलिए उसकी सेना शीघ्र से शीघ्र खानवाह की ओर कूच करने की तैयारी करने लगी।

फिर एक दिन वह भी आ गया जब खानवा में घमासान युद्ध हुआ। बाबर का तोपखाना राजपूतों के लिए क़हर साबित हुआ। तोपें आग बरसाती जाती थीं। पर राजपूतों में हिम्मत की कमी न थी। वे एक के बाद एक तोपों के मुंह की ओर बढ़े जाते थे। इतनी बड़ी सख्या और उनका ऐसा उत्साह देख कर बाबर के सैनिकों की हिम्मत बैठ गयी। उसी समय उसकी सेना में किसी ने यह फैला दिया कि हिन्दुस्तान के एक मशहूर ज्योतिषी ने हिसाब लगा कर यह भविष्यवाणी की है कि इस लड़ाई में बाबर की हार होगी। इस समाचार से मुगलो की रही सही हिम्मत भी जवाब दे गयी। लेकिन दूसरी तरफ राजपूत लगातार आगे बढ़ते आ रहे थे और इस विजय से उनका उत्साह बढता जा रहा था। लगता जैसे वह भविष्यवाणी सच करके ही रहेंगे।

रात हो गयी थी। युद्ध अगले दिन के लिये स्थगित कर दिया गया था। रात की निस्तब्धता बढ़ती जा रही थी। युद्धभूमि मे भयानक वातावरण उपस्थित था। रात के काले अंधेरे में लाशों से पटा हुआ मैदान खामोश पड़ा था।

राजपूती शिविरों में आज की विजय की प्रसन्नता नृत्य कर रही थी। कल के लिए उनका उत्साह दूना हो गया था। राना के हिन्दू राज्य के स्वप्न सच्चे होते दीख रहे थे। सैनिक विजयोल्लास में आज की थकान को भूल कर मस्त थे।

उधर मुगलों के तम्बुओं में मुर्दनी छायी हुई थी। वफात का सा समां बंध रहा था। सिपाहियों के चेहरों से रंज का आलम बरस रहा था। उनका जोश फीका पड़ चुका था। उन्हें अपनी मौत नजदीक दीख रही थी। सिर्फ बाबर के डेरे में रोशनी थी। बाकी सब डेरों में कत्ल की रात का सा गमगीन अंध था। तमाम फिजा में अजीब सी

डरावनी खामोशी थी और सिपाहियों को नींद नहीं आ रही थी। दो-दो, चार-चार, इकट्ठे हो कर कल के बारे में सोच रहे थे।

"इन राजपूतों में बला का जोश है। मैं गोला चलाता चलाता थक जाता हूँ मगर ये हैं कि आगे ही बढ़ते जाते है। लगता है तोप के मुंह में घुस जायेंगे।" उनकी इस कदर हिम्मत पर मेरा मजबूत दिल भी कांप कांप उठता है। "उस्ताद अली बयान कर रहा था ?" और जहाँपनाह, वह राना, गजब का लड़ाका है। बन्दे की एक आंख, एक टाँग और एक हाथ तो है ही नहीं। बताते हैं कि उसके जिस्म पर अस्सी जबरदस्त घाव लगे हुए हैं, लेकिन चेहरे पर जरा भी शिकन नही। जहांपनाह, खूब लड़ता है, बला की हिम्मत है इन लोगों में-" उस्ताद खां सहसा बाबर का संकेत पा कर चुप हो गया नहीं तो शायद सारी रात कहता ही जाता।

बाबर के डेरे में भी एकाएक खामोशी छा गयी। बाबर सिर पर हाथ रखे बैठा था। उस्ताद खां सहसा चुप हो कर उसकी ओर एकटक देख रहा था। पांच छह सरदार और बैठे थे, वह भी खामोशी से सिर झुकाये बैठे हुए थे।- जैसे किसी की मौत का मातम मना रहे हो। बाबर के पीछे गुलाब खड़ी थी, डरी सी। आज उसकी अदायें खामोश थीं। उसका रंग फीका लग रहा था। लेकिन उसकी साथिन सुराही वैसे ही अपना सिर बुलन्द किये खड़ी थी, और उसके पेट मे हमेशा की तरह नशीली शराब भरे हुए थी। बाबर के पास ही उसका खाली जाम रखा हुआ था और एक ओर को लुढ़क गया था। उसे भरने की हिम्मत भी गुलाब को नहीं हो रही थी। वह उसे सीधा तक न कर सकी थी।

इस गहरी खामोशी को एकाएक तोडते हुए बाबर गरज उठा, "यह कैसी मुर्दनी छा रही है ? क्या तुम लोगों का खून सर्द पड़ गया है ? इस तरह खामोश बैठने से तो कुछ काम चलने वाला नहीं है। सबकी जबानों पर ताले पड़ गये हैं। क्या तुम लोग यहां मेरी मौत का

मातम मनाने को इकट्ठा हुए हो ?

"जहांपनाह की मौत ?" इतनी बड़ी डांट सुन कर सबकी जीभ तालू से लग गयी। बाबर का चेहरा तमतमा रहा था। उसकी ओर देखने को किसी में हिम्मत न थी। सभी चुपचाप बुतों की तरह बैठे रहे।

बाबर फिर बोला, "जाओ, सब सिपाहियों को इकट्ठा करो। कहो, मैं उनसे कुछ कहना चाहता हूं।" आज बाबर शहन्शाह की तरह नहीं एक सिपाही की तरह बात कर रहा था।

बाबर का गला खुश्क हो चुका था। गला तर करने के लिए उसके हाथ जाम की ओर बढ़े। गुलाब की नजर उस ओर पहले से ही लगी हुई थी। उसने फुर्ती से उठाने से पहले ही जाम भर दिया। बाबर ने एक झटके से जाम उठाया और एक ही सांस में उसे खाली कर दिया'' दूसरा जाम लेते समय तक उसका क्रोध शांत हो चुका था। पर गुलाब के मन का डर अब तक वैसा ही बना हुआ था, और वह सहमी हुई सिर झुकाये खड़ी थी। तीसरा जाम खाली करते करते बाबर की आंखें लाल हो उठीं। चेहरा तमतमा उठा, जैसे तूफान उठ आया हो। गुलाब और अधिक डर गयी। उसके हाथ से सहसा सुराही छूट गयी। रोशनी में चमकती हुई वह सोने की सुराही छिटक कर दूर गिरी और उलट गयी। गहरे रंग की वह मदिरा रोशनी में लाल रक्त जैसी लग रही थी। सारे फर्श पर वह मादक पेय फैल कर सारे वातावरण में अपनी महक फैलाने लगा। गुलाब का मारे डर के बुरा हाल था। सारे शरीर से पसीना छूटने लगा। वह सिर न उठा पा रही थी। उसकी निगाह धरती में गड़ी जा रही थी।

बाबर ने एक क्षण उसकी ओर देखा फिर फर्श पर दूर तक फैली हुई शराब को, और मुस्करा दिया। गुलाब उसकी मुस्कराहट न देख सकी।

तभी सरदारों समेत उस्ताद खां अन्दर आया। वह कुछ कहे

इससे पहले ही बाबर ने अपने हाथ का जाम दूर फेंक कर कहा, "... पाक की कसम उठाकर मैं आज तोबा करता हूँ कि यदि के इस लड़ाई में मुझे फतह मिली तो ताउम्र कभी शराब नहीं छुऊंगा। गुलाब, यह शराब बिखर गयी है तो इसका गम मत करो। इसके बिखरने से मुझे एक रोशनी मिली है, अल्ला-ताला ने इसी बहाने मेरे सामने एक रास्ता खोला है। यह अच्छा ही हुआ है। तू भी मुझसे पहले शराब छोड़ने को कहा करती थी। ले अब आज अल्लाह को शुक्र भेज, उसने अनजाने ही तेरी बात मनवा ली। अब इस सुराही और इस प्याले को तोड़ कर फेंक दो। अब इनकी जरूरत नहीं रहेगी।"

गुलाब एकदम अचरज में आ गयी। इतने लोगों के जहांपनाह ने उससे जो अपनापा दिखलाया, उसके अहसान से दबी हुई और उसकी वजह से शर्म के साथ उसकी निगाहें न उठ सकीं। लेकिन मद्धिम सी आवाज में कहा, "जो हुक्म, जहांपनाह।" और बरतन उठा कर वहा से हट गयी।

बाबर उठ कर डेरे के दरवाजे पर पहुँचा। सामने सारे सिपाही खड़े थे, मुंह लटकाये। वे बाबर के क्रोधित होने की बात सरदारों से सुन चुके थे। आज न जाने जहाँपनाह क्या कहेंगे, यह सोच कर ही वे डर रहे थे। पर बाबर ने निहायत ही मुलायम लहजे में कहना शुरू किया।

"सरदारों और मेरे बहादुर सिपाहियों, तुम लोगों ने जिस बहादुरी और जोश के साथ अब तब मेरा साथ दिया है, वह काबिले तारीफ है और उसका मैं अहसानमन्द हूँ। मैं जानता हूं कि तुम लोग हिन्दोस्ता की गरमी से तंग आ गये हो। पर जरा सोचो तो, इस तरह पीछे हटने पर अब तक की मेहनत पर पानी फिर जायेगा। अब तक की हासिल इज्जत, यह तमाम जमीन-जायदाद, यह सल्तनत सब कुछ धूल में मिल जायेगा। और सुनो, जो आदमी पैदा हुआ है वह एक

न एक दिन जरूर मरेगा। अल्लाह ने हमको सुनहरा मौका दिया है : अगर हम जंग में शहीद होंगे तो हमें जन्नत बख्शी जायेगी और अगर फतह हासिल करेंगे तो इतनी बड़ी सल्तनत के मालिक होंगे जो खुद किसी जन्नत से कम नहीं है। इस तरह हमारी हार और जीत दोनों में ही हमें फायदा है। मैं समझता हूं यह बात समझ कर लड़ाई से जी चुराने की कोई वजह ही नहीं रह जाती। आओ अब सब खुदापाक को हाजिर नाजिर मान कर कसम खायें कि हम मरते दम तक जंग से मुंह न मोड़ेंगे। बहादुरी से लड़ेंगे, चाहें हम मर ही जायें। मुझे उम्मीद है कि तुम्हारा मुग़लिया खून अभी सर्द नहीं पड़ा होगा।"

वह छोटी भी किन्तु ओजस्वी वक्तृता ने सैनिकों में उत्साह भर दिया और सबने उत्साहित हो कर, "शहन्शाह बाबर जिन्दाबाद" तथा 'अल्लाहो-अकबर" के नारे लगाये।

बाबर की आंखों में आंसू आ गये। उसने रुन्धे हुए कण्ठ से सबको शान्त किया और धीरे धीरे बोला, "साथियों, मैं तुम लोगों का जोश देख कर अपने को संभाल नहीं पा रहा हूँ। सचमुच मैं तुम लोगों के अहसान से ताउम्र दबा रहूँगा अब तुम लोग कुरान पाक हाथ में लेकर कसम उठाओ। मैं अभी सरदारों के सामने फिर कभी शराब न छूने की कसम खा चुका हूं प्यालों को तोड कर फेंक देने का हुक्म दिया जा चुका है। अब मुझे पूरी उम्मीद है कि अल्लाह पाक हमारी मदद करेगा और हमारी फतह होगी।"

सब ने कुरान-पाक हाथ में ले कर कसम खायी और फिर पहले की तरह नारे लगाये।

अगले दिन सुबह का युद्ध बड़ा ही घमासान था। राजपूतों में कल की विजय का उत्साह था तो मुगलों में रात की शपथ का बल। फिर भी राजपूतों का उत्साह और वीरता मुगलों के बल से कहीं ज्यादा थी। मुगल अब भी घबरा रहे थे। उनका आध्यात्मिक बल राजपूतों के वास्तविक भौतिक बल के सामने कब तक ठहर सकता था! वे फिर

घबराने लगे थे । यह देख कर बाबर ने पहले से दुगनी फुर्ती से आक्रमण किया और जगह जगह अपना घोड़ा ले जा कर सिपाहियों को रात की शपथ की याद दिलाता रहा । उस्तादखाँ ने तोपों को और अधिक तेजी से चलाना शुरू किया । इस तरह युद्ध में और अधिक तेजी आ गयी ।

दोपहर तक कोई विशेष घटना नहीं घटी । दोनों ओर की सेनाये बड़े उत्साह के साथ लड़ती रहीं । कभी राजपूतों का पलड़ा भारी हो जाता तो कभी मुगलों का लेकिन पीछे हटने का किसी ने नाम न लिया । तभी सहसा राना को गहरा घाव लगा और वह मूर्छित होकर एक ओर को लुढ़क गये । सरदारों ने इसे लक्ष्य किया और तुरन्त उन्हे हटा कर उनके स्थान पर वही पोशाक पहना कर एक मिलता जुलता अन्य व्यक्ति हाथी पर बैठा दिया गया । इस प्रकार शेष राजपूती सेना को इस दुर्घटना की वास्तविकता का पता ही न चल सका, और इसलिए उनके उत्साह में कोई परिवर्तन न आ पाया ।

बाबर पर तीरों की बौछार हो रही थी । राजपूतों ने मुगल सेना को चारों ओर से घेर लिया था, और वे तेजी से तीर चला रहे थे । मुगल सरदार जी जान से बाबर की रक्षा कर रहे थे । लेकिन बाबर उस बौछार से मुश्किल से ही बच पा रहा था । उसके सैनिक बेबस से लड़ रहे थे ।

तभी राजपूती सेना में एकाएक भगदड़ सी मच गयी । सहसा उनका पराक्रम ढीला पड़ गया । किसी ने सेना में यह फैला दिया कि राना मारे गये । जो व्यक्ति हाथी पर बैठा है, वहा राना नहीं है । यह सुनकर जीतते हुए राजपूतों के पांव उखड़ गये । राजपूत सेनापति इस आश्चर्य में ही पड़े रहे कि जब यह बात केवल कुछ विश्वस्त लोगों को ही मालूम थी तब कैसे और किसने इसे सेना में फैला दिया । हारते हुए मुगलों ने जब यह देखा तो वे उन पर टूट पड़े ।

बाबर पर अब भी वैसी ही बौछार हो रही थी । उसमें कुछ शिथिलता तो आयी पर बच निकलने का अवसर अब भी नहीं था ।

सहसा बाबर ने दूर से देखा, "राना मर गये, भागो, भागो !" कहता हुआ एक क्षीण स्वर उसकी ओर बढ़ रहा है । निकट आने पर उसने देखा कि वह एक सुन्दर राजपूत युवक था । और अधिक पास आने पर बाबर चीख उठा, "गुलाब ?"

"हां, जहाँपनाह," हांफते हांफते गुलाब बोली, "मैं ही हूं आपकी अदना लौंडी, गुलाब ।" और उसने सिर झुका कर आदाब किया ।

बाबर उसे एकटक देखने के अतिरिक्त कुछ न कर सका ।

इस बीच बाबर अपने को बचाना भूल गया था, लेकिन गुलाब का ध्यान उधर था । बाबर की ओर आता हुआ एक तीर सहसा आगे बढ़ी हुई गुलाब के लगा और वह "उफ" कह कर गिर पड़ी । गिरते गिरते उसने पीड़ा से कराहते हुए कहा, "शहन्शाह, ने जब शराब ही छोड दी तब मेरी क्या जरूरत रह गयी लेकिन शहन्शाह की जरूरत तो अब और ज्यादा हो गयी है । इसलिये इस नाचीज ने यह गुस्ताखी की है । माफ करें, जहांपनाह ।"

बाबर उसके सहसा बन्द होते हुए ओठों में मदिरा की सी लाल मादकता पा कर तड़फ उठा । उससे न रहा गया । उसने उतर कर जल्दी से उन तड़पते ओठों को चूम लिया । जैसे उसने शराब का जाम खाली किया हो ।

गुलाब का चेहरा एक विशेष आभा से भर गया और अतीव आनन्द से भर कर उसने बाबर की ओर देखा । उसके सर्द होते हुए ओठो में फिर कम्पन हुई, "जहांपनाह, आपने मुझे तोफा मांगने को कहा था । इस वक्त बिना मांगे ही मुझे दुनिया की बेशकीमती चीज मिल गयी हैं जिसे मैं बहुत चाहने पर भी कभी न माँग सकती थी और न शायद हासिल ही कर सकती थी । आपका यह आखिरी तोफा ले कर मैं रुखसत हो रही हूं । खुदा हाफिज !"
और वे ओठ स्तब्ध हो गये ।

बाबर की आंखों में सागर उतर आया था ।

प्रणय निरोध

जब से अरुणजित् अजायबघर से लौटा था, परेशान था। दिन खाली था, इसलिए वह अजायबघर चला गया था। वहां तरह तरह की चीजें देख कर उसका मन बहल गया था। हजारों वर्ष पूर्व की अनेक चीजें देख कर उसे बहुत आश्चर्य हुआ था। तब के मनुष्य और उनके रहन सहन से सम्बन्धित अनेक बातें जानकर उसे सहसा विश्वास नहीं हुआ था कि मनुष्य कभी इतना अज्ञानी, इतना विवश और निरीह भी हो सकता है। यह मनुष्य जो आज प्रकृति और सृष्टि दोनों का नियन्ता है, कभी अनदेखे और अनजाने संदिग्ध शक्ति–स्रोतों से पराभूत भी रहा होगा, वह सोच न सकता था।

उसने वहां बहुत सी ऐसी विचित्र चीजें देखीं जिनकी

आवश्यकता आज के युग में अनुभव भी न होती थी। पता नहीं, तब के लोग क्यों व्यर्थ ही उन सब में संलिप्त रहते थे। उनमें कलेन्डर और घड़ियां थीं, जो समय और वर्षों का हिसाब रखने के काम आती थीं। भला समय का हिसाब रखने की क्या आवश्यकता थी? कुछभी जे, बऔर कोई सा भी सन् हो किसी को उससे क्या लेना? लेकिन तब लोग मरते भी थे। मर कर बेकार हो जाते थे। फिर न वे साँस ले सकते थे, न बोल पाते थे और न कुछ कर पाते थे। कैसा डरावना समय था, तब? मरने से भी भयानक और बातें थीं। बीमारियाँ, बुढ़ापा और न जाने क्या क्या नाम होते थे, उनके। अणुजित् को याद आया कि इनके बारे में तो उसके एक मित्र ने भी बताया था। वह मित्र डाक्टर था। उसने यह भी बताया था कि किस तरह मनुष्य ने जाना कि बुढ़ापा भी एक बीमारी है, और उसके भी कीटाणु होते हैं, जो एक विशिष्ट वातावरण, तथा शारीरिक अवयवों की शिथिलता पर बढ़ जाते है। फिर इसका इलाज निकाला गया और अब तो मौत पर भी विजय प्राप्त की जा चुकी है।

अजायबघर के एक भाग में लायब्रेरी थी। जिसमें पुस्तक नाम की बहुत सी चीजें रखी थीं। उस जमाने में विद्या और ज्ञान के लिए इनकी ज़रूरत पड़ती थी। तब आज की तरह प्रत्येक विद्या के इन्जेक्शन और आपरेशन नहीं चले थे। जिन्दगी का आधा भाग पढ़ने में लगाना पड़ता था, स्कूल और कालेज में बंधना पड़ता था, मास्टर और प्रोफेसर नाम के आदमियों का डर बना रहता था। और उसके बाद भी परीक्षा पीछा न छोड़ती थी। और आज कितनी आसानी है? डाक्टर के पास जाओ, और अपने मस्तिष्क का आप्रेशन करा कर उसमें मनचाही विद्या भरवा लो। न कुछ समय लगे और न कोई परेशानी हो।

तब का मनुष्य कितना मूर्ख था। यह भी नहीं जानता था कि शिक्षा शल्यक्रिया द्वारा हो सकती है। व्यर्थ में वही सब बात धीरे धीरे, इतना समय लगाकर क्यों की जाय? मस्तिष्क का विकास तब बहुत लम्बी और कष्टदायक पद्धति से किया जाता था। कानों में से विद्या

प्रविष्ट करायी जाती थी। उफ़, कितनी कष्टप्रद प्रणाली थी, अणुजित् सोचने लगा।

जब अणुजित् ने लायब्रेरी की पुस्तकें देखीं तो उसका मन उन्हें पढ़ने को हुआ। यों तो वह व्यावहारिक अणुशास्त्र में ही शल्यित था किन्तु उसने अपने पेट में कुछ अतिरिक्त विद्याएं भी भरवा लीं थी। आसान और साधारण विद्याएं अक्सर पेट में भरवा ली जाती थीं। पुराने जमाने की तरह पेट खाना पचाने के काम तो तभी आता, जब मनुष्य को भोजन की आवश्यकता हुआ करती। किन्तु अब भूख पर भी विजय प्राप्त कर ली गयी थी। इसलिए पेट का उपयोग भी इस प्रकार किया जाता था। ये अतिरिक्त विद्याएं जिस डाक्टर ने भरी थी वह बेईमान था। उसने मिलावट का पदार्थ भर दिया था। मिलावट इतिहास जैसे निरर्थक और पुराने विषय की थी। इसलिए अणुजित् को बहुधा पुरानी बातें जानने का मन कर आता था।

जब उसने पुस्तकें पल्टीं तो उसे लगा कि वह उनमें से बहुत सी बाते नहीं जानता। उन्हीं किताबों में उसने एक प्रेम कहानी पढ़ी, तो वह चचल हो उठा। फिर तो उसने लायब्रेरी की सारी किताबे टटोल डाली। आधी से अधिक में प्रेम का वर्णन था।

"प्रेम" उसके लिए बिल्कुल नया शब्द था। प्रेम क्या होता है, यह तो वह इतना पढ़ने पर जान गया। किन्तु आज के युग में उसका कहीं जिक्र न देख कर उसकी आवश्यकता स्वीकार करने को तैयार न हुआ। किन्तु प्रायः सभी पुस्तकों में प्रेम का वर्णन करके, उसे श्रेष्ठ बताया गया था। इसलिए वह सोचने लगा कि अवश्य ही प्रेम करने मे बहुत आनन्द आता होगा। उसे भी प्रेम करना चाहिये। आखिर एक बार प्रेम करके देखा तो जाय, कि कैसा लगता है। उसका मन मचलने लगा।

लेकिन किस तरह ? अणुजित् के सामने प्रथम बार प्रश्न-चिह्न उपस्थित हुआ था। प्रत्येक शक्ति और प्रत्येक व्यापार का अधिकारी आज

का मानव पुराने जमाने के निरीह मनुष्यों की किसी साधारण बात का ढंग न जानता हो, यह वह कैसे सह सकता था ?

लेकिन प्रेम करने की प्रक्रिया वह नहीं समझ पाया। यह किसी किताब में भी नहीं लिखा हुआ उसे मिला कि प्रेम इस तरह किया जाता है।

आखिर उसने आप्रेशन करने वाले डाक्टर से सलाह लेना ही ठीक समझा। डाक्टर भी इसका कोई ठीक उत्तर न दे सका। वह बोला—"प्रेम करने का कोई इन्जेक्शन अब तक तो बना नहीं है। मैं यह नही मान सकता कि प्राचीन काल में मनुष्य हमसे अधिक ज्ञानी था जो उसे प्रेम करने की प्रणाली ज्ञात थी।"

"लेकिन," अणुजित् बोला, "मैंने तो सभी किताबों में प्रेम का जिक्र पढ़ा है। कोरी कल्पना होती तो लोग प्रेम के बारे में इतना अधिक कैसे लिख सकते थे ? नहीं, डाक्टर साहब, यह कुछ न कुछ होता अवश्य है।"

"इसी तरह का वर्णन तो भगवान का भी किया जाता था, लेकिन वह भी तो कुछ नही निकला। फिर हो सकता है, कि प्रेम भी कुछ न होता हो।"

"नहीं साहब," अणुजित् बोला, "मैंने पढ़ा है, कि प्रेम की कई तरह की किस्में होती थी। हृदय पर उसका सीधा प्रभाव पड़ता था। प्रेम से प्रभावित मनुष्य का रक्तचाप बढ़ जाता था। उसकी आंखों मे किसी विशेष प्रकार की किरणें निकलने लगती थी, और उनकी शक्ति एक-पक्षीय हो जाती थी। प्रेम का अन्त दो तरह से होता था, या तो उन्माद, पागलपन और उसके बाद मृत्यु अथवा विवाह-पत्नी और बच्चे।"

"विवाह और बच्चे ? यह दोनों एक दूसरे से सम्बन्धित किस तरह हो सकते हैं ? विवाह क्या बला होती है ? मैं नहीं जानता, किन्तु बच्चों के बारे में, तो, मि० अणुजित् तुम भी काफी जानते होगे। बच्चे होने में प्रेम का क्या सम्बन्ध ? बच्चे तो रासायनिक प्रक्रिया के

परिणाम हैं। क्या तुम्हें कास्मिक स्ट्रीट की विशाल प्रजननशाला का स्मरण नहीं है ?"

"क्यों नहीं, डाक्टर साहब ? मैं वहां कई बार जा भी चुका हू। मैंने बच्चे बनते हुए देखे हैं किस तरह विभिन्न टेस्ट-ट्यूबों के पदार्थों को एक बड़े जार में डाल कर माँस का लोथड़ा बनाया जाता है, मैंने देखा है। फिर कई गैसों से रंग दिया जाता है। आणुविक किरणों से स्पंदन पैदा किया जाता है आदि सारी प्रक्रियाएं मेरी देखी हुई हैं।"

"अच्छा, मि० अणुजित्, इस समय तो मुझे एक नया आप्रेशन करना है। मैं इस विषय पर पूरी खोज करके फिर बताऊंगा। मैंने तुम्हारी सब बातें ध्यान से सुनीं हैं, मेरे मन में भी सहसा शंका उठी है, कि प्रेम कुछ हो सकता है। इस चर्चा को सुनकर मेरे हृदय में अजीब सा दर्द उठने लगा है। ऐसा दर्द जिसे युगों पहले जबरदस्ती भुला दिया गया हो।"

अणुजित् उठकर चलने को हुआ तो, डाक्टर ने फिर कहा. "हां, तब तक तुम एक काम करना। किस तरह का प्रेम करना चाहते हो, निश्चित कर लेना, और किससे प्रेम करना है, यह भी चुन लेना।"

किससे प्रेम किया जाय, अणुजित् के सामने समस्या थी। उसने इसके लिए एक लड़की का होना जरूरी पढ़ा था। कौन लड़की इसके लिए चुनी जाय, वह सोचने लगा। यौन-वैभिन्नय समाप्त हो चुका था। अधिकारों की समानता के लिए संघर्ष करती करती स्त्रियाँ पुरुष के बराबर आ गयी थीं कि उनमें कोई विभेद ही नहीं रह गया था। प्रेम, विवाह, मैथुन आदि की संज्ञाएं विलुप्त हो गयी थीं। बच्चे बनाने के कारखाने थे। स्त्रियों के बच्चे न होने के कारण स्तनों का उपयोग नही होता था, इसलिए वे भी लुप्त हो गये थे। शरीर के प्रजनन अंगो का कोई उपयोग नहीं रह गया था। ये सब व्यवस्था प्रजनन की घिनौनी और पीड़ा देने वाली प्रणाली के कारण की गयी थी। समय के बीतने के साथ साथ ये सब व्यापार इस तरह भूले जा चुके थे कि

किसी को इनके भूतकालीन अस्तित्व की कल्पना भी न होती थी।

तभी उसे हीलियमदता की याद आयी। हीलियमदता इंजीनियरिंग मे शल्यित थी। अणुशास्त्री होने के कारण उससे हीलियमदता को काम पड़ता रहता था। तो हीलियमदता को ही प्रेम के लिए क्यों न चुना जाय? उसने लायब्रेरी की पुस्तकों में प्रेमिका के रूप का वर्णन पढा वैसे रूप का तो आज के युग में कोई महत्व ही नहीं रह गया, किन्तु फिर भी हीलियमदता का सर्वांग सुन्दर था। वह पुस्तकों में वर्णित नायिकाओं की तरह नाजुक और आकर्षक तो अवश्य थी, किन्तु अन्य सब बातों में पुरुषों जैसी ही थी।

प्रेमिका का निश्चय हो जाने पर अणुजित् के सामने एक ही प्रश्न शेष रह गया था : किस तरह का प्रेम किया जाय? प्रेम के जिन दो सीमान्त के बारे में उसने पढ़ा था, वह उनमें से कोई भी ठीक नही समझ रहा था। मरने का भय तो उसे नहीं था लेकिन वह पागल होना भी नहीं चाहता था। विवाह पता नहीं क्या होता है? एक नयी बात करना निरापद नहीं था। फिर वह क्या करे? लेकिन प्रेम करना भी तो नयी नयी बात है। फिर एक नयी बात और सही। साहस करके ही अनुभव किया जा सकता है।

डाक्टर ने प्रेम को लेकर शोध–कार्य पूरा कर लिया। वह उसकी गहराई तक पहुँचं गया। कॉस्मिक किरणों से भी कही अधिक प्रभावशाली प्रेम–किरणों का परिणाम ही प्रेम होता है। इन किरणों का उद्गम हृदय होता है, किन्तु यह शरीर के प्रत्येक अवयव से विभिन्न चेष्टाओ के माध्यम से बाहर निकलती हैं। आँखों का इसमें विशेष योग होता है। ये किरणें जब विपरीत सेक्स के प्राणी पर टकराती हैं तो उसके हृदय मे एक खलबली सी मच जाती है, उसका सारा शरीर कांप उठता है। सहसा ही उसकी सारी संज्ञा विलुप्त हो जाती है। यदि किरणों का प्रभाव कुछ अधिक हुआ तो पसीना तक छूट जाता है, कभी कभी मूर्च्छा

भी हो जाती है । इन किरणों का प्रभाव स्थायी होता है । प्रभावित हृदय में एक अजीब सा दर्द छोड़ जाता है, जिसका इलाज कठिन है ।

लेकिन आज के मनुष्य की शारीरिक रचना प्रेम के अनुरूप नहीं है । वह इस दशा में प्रेम किरणों का शिकार नहीं हो सकता । डाक्टर ने इस प्रकार के इन्जेक्शन भी तैयार कर लिये जिससे मनुष्य को प्रेम किरणों के प्रभावानुकूल बनाया जा सकता है । साथ ही ऐसे भी जिनके लगाने से प्रेम किरणों का प्रभाव कभी भी किसी भी दशा में नहीं पड़ सकता ।

डाक्टर की यह विस्तृत रिपोर्ट जब प्रकाशित हुई तो संसार भर में खलबली मच गयी । सभी प्रेम के विषय में अधिकाधिक जानने को उत्सुक होने लगे । लड़कियों ने इसमें विशेष रुचि ली ।

एक दिन अरुणजित् डाक्टर के पास आया । डाक्टर ने उसके प्रेम का इन्जेक्शन लगा दिया और प्रेम करने के लिए आवश्यक निर्देश दे दिये । उसने यह भी बताया कि प्रेम की शुरुआत एकदम ही नहीं करनी चाहिये । यह उसे कई स्टेज में करना पड़ेगा । अपने शिकार पर प्रेम किरणों का प्रभाव डालने से पहले उसकी शारीरिक तथा आन्तरिक रचना प्रभावानुकूल बनानी पड़ेगी । इसके लिए भी डाक्टर ने आवश्यक साधन उसे दिये थे ।

कुछ दिन बाद ही सहसा अरुणजित् डाक्टर के सामने फिर उपस्थित हुआ । उस का चेहरा कुम्हलाया हुआ था और वह बहुत निराश सा था ।

जाते ही डाक्टर से बोला, "डाक्टर साहब, आपके इन्जेक्शन तो बेकार साबित हुए । इनसे तो कुछ नहीं हुआ !"

"क्यों, क्या हुआ ?" डाक्टर ने आश्चर्य से कहा ।

"मैं प्रेम करने में सफल ही नहीं हुआ ।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता । यह तो 'एक्सट्रा पावरफुल' है ।

ज़रूर तुमने कहीं कोई गलती की होगी ।"

"नहीं, डाक्टर साहब । मैंने पूरी कोशिश की है । आपके बताये प्रत्येक निर्देश का पालन किया है, किन्तु उस लड़की की तरफ से कोई उत्तर ही नहीं मिला । आपके इन्जेक्शन के कारण जो प्रेम किरणें निकलीं, वे उसके शरीर में प्रवेश ही न कर सकीं । आश्चर्य तो मुझे तब हुआ जब कि वह 'रिफ्लेक्ट' होकर लौट आयीं ।"

"लौट आयीं ?" डाक्टर ने आश्चर्य से कहा ।

"हां ।"

"क्या तुमने प्रेम करने के लिए किसी लड़की को ही चुना था ?"

"जी हां ।"

"क्या तुमने उस लड़की के वक्ष पर पहले आणविक स्प्रे कर दिया था ?"

"जी हाँ ।"

"तुमने अपनी आंखें उसकी आँखों से मिलाई थीं ?"

"हां ।"

"तुम्हारा उसका फासला दो फीट से ज्यादा तो नहीं था ?"

"जी नहीं । मैं उससे सट कर खड़ा था ।"

"तो क्या उस पर कोई प्रभाव नहीं मालूम दिया ?"

"पहली बार तो मुझे लगा कि जैसे वह कुछ प्रभावित हुई है । किन्तु दूसरी बार प्रयत्न करने पर पहले का प्रभाव भी नष्ट हो गया और फिर तो मेरी सारी चेष्टाएं बेकार होती गयी ।"

"नहीं, यह नहीं हो सकता । मेरा प्रयोग कभी असफल नहीं हो सकता । जरूर तुम झूठ बोलते हो ।" डाक्टर सहसा बौखला सा गया और हड़बड़ाकर इस तरह बोलने लगा जैसे कि उसका सब कुछ लूट लिया गया हो ।

उसकी यह दशा देख कर अणुजित् को भी आश्चर्य हुआ । वह सहसा डर सा गया किन्तु वह तो सचमुच असफल हुआ था, इसलिए

फिर बोला, "नहीं, डाक्टर साहब यदि आपको विश्वास न हो तो हीलियमदत्ता से पूछ लीजिए जिस पर मैंने वह सब प्रयोग किया था।"

डाक्टर सिर पर हाथ रखे शान्त बैठा कुछ सोच रहा था। सहसा यह बात सुन कर चौंक कर बोला, "तो क्या तुम हीलियमदत्ता से प्रेम करने गये थे ?"

"हां, क्यों ? क्या वह लड़की नहीं ?"

"लडकी तो हैं किन्तु वह तो कल मेरे पास आयी थी और..."

"और क्या, डाक्टर साहब ?" बात काटकर अणुजित् बोला।

"वह तो मुझसे प्रेम निरोधक इन्जेक्शन लगवा कर गयी है। वह भी 'एक्सट्रा पावरफुल' हैं। उस पर किसी भी तरह की प्रेम किरणों का किसी दशा में कभी असर नहीं हो सकता।"

अणुजित् सुन कर सन्न रह गया। उसकी चेतना लुप्त होने लगी।

डाक्टर कहता रहा, "वह मेरे पास आ कर बोली थी कि एक युवक मेरे सामने बहुत विचित्र सी हरकतें कर रहा है। वे हरकतें उसे मेरे प्रकाशित वक्तव्य के अनुरूप लगी थी, तो उसे प्रेम किरणों का शक हुआ था। लेकिन वह प्रेम के पचड़े में पड़ना नहीं चाहती थी। उसे विवाह और बच्चों से डर लगता था। इसलिए उसने मुझसे प्रेम निरोधक इन्जेक्शन लगवा लिये थे।"

लेकिन यह सब सुनने योग्य चेतना अणुजित् में शेष नहीं रह गयी थी।

एक हजार वर्ष बाद की एक तर्कसम्मत परिकल्पना

मोल भाव

बहुत मोलभाव करने के बाद अंगूर दो रुपये सेर ही लेकर माना। मैंने पहले ही उससे तीन रुपये को कहा था पर करीब पन्द्रह मिनट झक झक करने पर ही वह साढ़े तीन से, तीन पर उतरा। रंजना ने हंस कर कहा—"अगर ये लोग एक बार ही ठीक दाम कह दें तो हमारा भी समय बचे और इनका भी !"

मैंने भी सिर हिला कर अनुमोदन किया, तभी मेज पर गुलदस्ता सजाता हुआ मेहर बोल उठा—"सरकार, एक बार की बात है···" और वह चुप हो गया। वैसे मेहर बड़ा ही मेहनती और चतुर नौकर है, बस उसमें यही बुरी आदत है कि वह हम लोगों के बीच में ही बोल उठता था। विशेष कर रंजना को उसकी यह आदत बहुत नापसन्द थी। वह कहती थी
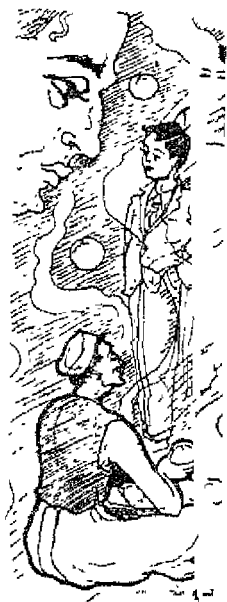
कि नौकर होकर यह हम लोगों के बीच में अपनी कहने क्यों बैठ जाता है ? रंजना ने आंखें तरेर कर उसकी ओर देखा । तभी वह सहम कर चुप हो गया था । पर मैंने उससे हंसते हुए पूछा—"हाँ, मेहर, क्या हुआ था उस दिन ?"

जैसे उसे साहस मिला हो । वह बोला, "सरकार, जब मैं फल बेचा करता था, तो एक बार मैंने सोचा कि विना मोलभाव के एक ही दाम पर फल बेचूंगा । उस दिन मेरे पास संतरे थे । जो खरीद में दो आने फ़ी संतरा की दर से थे । मैंने उन्हें ढाई आने फ़ी के हिसाब से बेचना तय करके आवाज लगायी और सारे दिन एक ही आवाज पर बैठा रहा । सच कहता हूं, सरकार, वहीं पर, उसी तरह का संतरा साढे तीन आने का बिक रहा था और शाम के चार बजे तक मेरा एक भी संतरा न बिका । मुझे बड़ा अफ़सोस हुआ । इस दुनियां में विना झूठ के—काम नहीं चलता । फिर मैंने पुराने ढङ्ग से बेचना तय किया और एक खरीदार के पूछने पर कहा, 'साढ़े तीन—तीन आने ।' और वह तीन तीन आने के हिसाब से तय करके आधे से भी ज्यादा संतरे फौरन ले गया । बाकी संतरे भी उसी तरह तीन—तीन, साढ़े तीन आने की दर से बिक गये । तो सरकार, इस दुनियां में विना मोल भाव के काम ही नहीं चलता ।" और वह दूसरी मेज़ का टेबल-क्लोथ ठीक करने लगा । मैंने उसकी ओर देखा । लगा जैसे उसने किसी बड़े फिलासफर की तरह दुनिया की चाल ढाल पर अपना मत दिया हो मुझे भी उसकी बात ठीक लगी । रंजना उठ कर चली गयी, शायद रसोई चढ़ाने को । कामकाजी गृहिणी को ऐसे समय और काम हो क्या सकता है ? मैं मेहर की बात सोच रहा था । सोचता रहा । तभी नीलिमा कमरे में आयी और मेज़ पर से कोई किताब लेकर कमरे से बाहर चली गयी । मैं उसे देखता रहा । ओह ! मेरी नीली, कितनी सुन्दर है, फिर भी उसकी बात अभी तक कहीं भी तय नहीं हो पायी । नीली, ठीक पूरे पके संतरे—सी, यौवन की अवस्था में विचर रही थी । उसे देख कर नित्य

की भाँति आज भी दबी हुई चिंता की रेखाएं उभर आयीं। सोचने लगा, कैसे होगी ? नीली बीस की हो चुकी थी। इस साल बी. ए. कर लेगी। क्या करूं ? लगता है ठीक सन्तरे की भाँति मोलभाव करे बगैर काम नहीं चलेगा ! क्या मेरी भोली, अल्हड़, नीलिमा मोलभाव करके उठाई जायेगी ? लेकिन बड़ा विचित्र व्यापार है यह। जिस की चीज वही कीमत दे। लड़की भी दे और फिर दहेज। ओह ! क्या विडम्बना है ? नारंगी रंग की जारजट की साड़ी पहने वह नागपुरी, पके और रसीले संतरे-सी ही तो लग रही थी। तो क्या उसका भी मोलभाव करना पड़ेगा ? और क्या ? हां, उस दिन कानपुर के उन सज्जन से यही तो हुआ था। मैंने बीस हजार कहे थे, न कम न अधिक मैं उन्हीं बीस हजार पर रिश्ता करने को उनसे कह रहा था। उनका लडका एम. ए. में पढ़ रहा था। एक मिल था। घर भरा पूरा था। पर वह अनुभवी खरीदार की तरह मेरे संतरे का मोलतोल किये बगैर लेने को राजी न थे।

सहसा वे बात का रुख बदल कर बोले थे "हमने लड़की देखी तो है नहीं अभी। कहीं कुछ..."

मैं उनका रुख बदला देखकर सौदा पटता समझ रहा था। पर अब उनका अर्थ स्पष्ट था कि कहीं कुछ ऐब...ओह ? मेरी नीली किस प्रकार ठोक बजा कर देखी जायेगी। वह उसे पहले देख चुके थे। फिर भी उनका आशय ऐसा अस्पष्ट था। मैंने कहा था "सेठ जी, आप उसे देख तो चुके हैं, फिर...?" पर उन्होंने उसी प्रकार उत्तर दिया था-"मेरा मतलब मोहन की माँ से है। औरतें ही अच्छी तरह देख भाल सकती है।"

उनके इस व्यवहार से मैं कुछ अचरज में आया था। मुझे क्या मालूम था कि ऐसा होता है। मेरा तो वह पहला अवसर था। मैं सत्यवादी की भांति बोल पड़ा था—"उसमें कोई ऐब नही है। सूरत शकल तो जैसी है आप देख ही चुके हैं। हाँ उसके सीधे पैर में छह अंगुलिया है।"

"छह अगुलिया !" वह चौंके थे। मुझे ऐसा लगा कि मेरे संतरे में दोष निकल गया हो ! मैं जानता था कि मेरे संतरे में सिर्फ जौ भर का ही ऐसा निशान है, इसीलिए मैंने बिना हिचक के बतला दिया था। परन्तु खरीदार को जैसे ऐसा लगा हो कि कहीं यह सारा संतरा ही सड़ा न निकल जाये और उसने जैसे उसे थैले में डालते डालते निकाल कर वापस कर दिया हो !

वह सेठ साहब बोले थे—"तब तो·········" और उनका वाक्य पूरा न होने पर भी मैं उनका भाव समझ गया था। मेरा संतरा न बिकेगा।

पर वे फिर बोले थे—"अच्छा, मैं सोच समझ कर फिर जवाब दूँगा।"

किन्तु उनका अभिप्राय तो पहले ही स्पष्ट हो चुका था, और मैंने उनके उत्तर की प्रतीक्षा न की थी। और न अब कर रहा हूँ। पर नीली का क्या होगा ? यह तो सोचना ही है। सोचना भी क्या ? संतरे की तरह अपने संतरे का ऐब छिपा कर, मोल भाव करके, बेचना होगा ! यह व्यापार ऐसा ही व्यापार है ! मेरी ही चीज़ मैं ही दाम दूँ ! उल्टा, ठीक उल्टा मेहर के व्यापार से। मेहर ने पहले अधिक दाम मांगे थे, साढ़े तीन आने, और फिर तीन आने में मोल हो गया था। पर मैं पहले कम कहूँगा। फिर धीरे-धीरे बढ़ूंगा। दस हजार से प्रारम्भ होगा। अपनी परिस्थिति का बखान करके मजबूरी प्रकट करूंगा। मेहर ने कहा होगा—"अच्छा. बाबूजी, आपके लिए दो पैसे और छोड़े दे रहा हूँ। सिर्फ आपके लिए।" उसी तरह मेरे भावी समधी अपनी बीस हजार की माँग से उतरेंगे, कहेंगे—"आपकी दशा को देखकर मैं पांच हजार कम किये देता हूं।"

यह उल्टा व्यापार है न। इसलिए खरीदार-समधी ऐसा कहेगा। और फिर मैं अनुभवी दुकानदार की तरह राजी हो जाऊंगा। साथ ही कहूंगा—

"लड़की देख लीजिये। आपकी ही लड़की है। जब चाहें आ जाइये।" ठीक उसी तरह जैसे संतरे वाला कहे—"बाबूजी, देख लीजिये, कितने अच्छे नागपुरी संतरे हैं। एक–एक मीठा निकलेगा।" और उस जौ भर के खराब हिस्से को हथेली की तरफ रख कर बाबूजी को दिखा देगा।

नीली, मेरी नीली, पके नागपुरी संतरे—सी रसीली, मीठी सर्वगुण संपन्न, नीली भी अपने उस छोटे से, जौ भर के ऐब को छिपा कर दिखा दी जायगी और मेहर की तरह मेरे भी—संतरे बिक जायेंगे। मेरी नीली का संबंध तय हो जायगा।

और मैं मुस्करा दिया। जैसे मेरी चिन्ताएं कट गयी हों, जैसे मोल भाव तय हो गया हो। जैसे मेरे संतरे बिक गये हों, जैसे नीली का सम्बन्ध तय हो गया हो!

तभी नीली आ गयी मुझे बुलाने। खाना तैयार हो गया था।

●●

एक शिशु की कहानी

सुबह सुबह ही शहर के बाहरी भाग की एक
सड़क पर काफी भीड़ जमा थी। लकड़ी की टाल के
सामने एक घेरा बनाये बहुत से आदमी खड़े हुए थे
उनके बीच में एक नवजात शिशु आंखें मूंदे सफेद कप
में लिपटा हुआ रखा था। बच्चा अभी जीवित था
लकड़ी की टाल के एक कोने में छोटी छोटी लकडिय
के एक ढेर से दबा कर कोई इसे रख गया था। इध
से गुजरने वाले एक व्यक्ति की दृष्टि उस ढेर मे
चमकते हुए सफेद कपड़े पर पड़ी। जब वह ढे
हिलता हुआ सा जान पड़ा तब उसे कुछ संदेह हुअ
और उसने तुरन्त लकड़ियों को हटा कर देखा
उसके नीचे दबा हुआ यह बच्चा निकला था। लगत
था, किसी ने लोकापवाद से डर कर इस अबोध शि

को मारने के विचार से लकड़ियों मे दबा दिया था। उसे इसकी हत्या करने का तो साहस हुआ न होगा, इसलिए उसने यह ढंग निकाला होगा। किन्तु रात के अंधेरे में असावधानी के कारण बच्चा लकड़ियों से पूरी तरह ढका न जा सका होगा और कपड़े का कुछ भाग बाहर निकला रह गया। इस प्रकार संयोग से यह अबोध शिशु मरने से बच गया था।

बच्चा रखने वाले के सम्बन्ध में तरह तरह की अटकलें लगायी जा रहीं थी। आसपास के महलों की उन सभी विधवाओं के नाम सब को याद आ रहे थे जिनकी आयु प्रौढ़ावस्था के सीमान्त तक पहुँच चुकी थी। कुछ अधिक चंचल और फारवर्ड कही जाने वाली अविवाहित युवतियों का ध्यान भी किया जा रहा था किन्तु स्पष्ट रूप से नाम किसी का भी नहीं लिया जा सका था। लेकिन इस तरह बर्बरतापूर्ण ढंग से नन्हीं सी जान की हत्यारिन के प्रति धिक्कार की भावनाएं स्पष्ट दीख रही थी।

बच्चे के जीवित होने के कारण उसके पालन पोषण का प्रश्न भी सामने उपस्थित हुआ। तरह तरह के सुझाव सामने रखे गये। किसी ने अनाथाश्रम, किसी ने विधवाश्रम का नाम सुझाया। कोई कोई पुलिस मे सौंप देने की भी राय दे रहे थे। एक साहब ने तो यह भी सुझाव रखा था कि हो सकता है कि कोई उपस्थित सज्जन ही बच्चे को रखना चाहें। किन्तु भीड़ में से कोई भी ऐसा व्यक्ति सामने न आया। इनमे से दो-तीन समाज सुधारक नेता कहलाने वाले व्यक्ति तथा स्वयं यह प्रस्ताव रखने वाले सज्जन सन्तान सुख से वंचित थे और गोद लेने के विषय में सोच चुके थे किन्तु इस समय वे भी चुपचाप खड़े रहे।

फलतः भीड़ के सामने दो ही हल शेष थे—आश्रम में पहुंचाने का या पुलिस को सौंपने का। इसी बात को ले कर दो दल बन गये और देर तक एक दूसरे के विरोध में तर्क प्रस्तुत किये जाने लगे। इसी बीच बच्चा कुलमुलाया और धीमी सी, बेजान सी आवाज में रोने लगा।

लेकिन उस ओर किसी का ध्यान नहीं गया। सब अपनी बहस में लगे रहे। थोड़ी देर बाद एक आदमी ने आगे बढ़ कर उसे उठा लिया और चुप कराने का असफल प्रयत्न करने लगा।

नेताओं ने फैसला दे दिया। बच्चे को अनाथाश्रम में दाखिल करा दिया जाये। पुलिस को सौंप देने के पक्ष वालों में से कुछ की सतुष्टि हो चुकी थी किन्तु शेष नाक भौंह चढ़ा रहे थे, और एक आध वहां से खिसक भी गये।

इस निश्चय की घोषणा हो ही रही थी कि एक मैली-कुचैली सी अर्द्धप्रौढ़ा आगे बढ़ी और प्रायः दयनीय से स्वर में बोली, "बाबू लोग, अगर कृपा हो तो यह बच्चा मैं ले लूं। मेरे कोई बच्चा नही है। मैं इसे पाल लूंगी। मेहरबानी करके इसे मुझे दे दीजिये।"

सबका ध्यान उधर हो गया। घोषणा रुक गयी।

"तू कौन है, री?" एक खद्दरधारी बोले।

"अरे, यह तो अशर्फी है!" एक पंजाबी बोले, "महल्ले की कहारिन।"

"हां, आप बाबू लोगों की सेवक हूँ। मेहरबानी हो जाये तो गुण मानूंगी बच्चे की बड़ी लालसा है, मेरी। मैं इसे बड़े जतन से रखूंगी।"

"तू क्या जतन से रखेगी? जैसे तैसे तो अपना पेट पालती है।" एक सम्भ्रान्त सज्जन ने अशर्फी की गरीबी को लक्ष्य करके कहा।

"इसीसे तो अब तक चुप रही थी। लेकिन अब इसे लेने को कोई तैयार नही है और आप लोग इसे पुलिस को देने की सोच रहे हैं, तो मन न माना। आखिर, बच्चे की मुझे भी लालसा है। आप लोगों के पाँव पड़ती हूँ, इसे मुझे दे दीजिये। मैं इसे जी जान से पालूंगी, अपने जिगर के टुकड़े की तरह रखूंगी।" अशर्फी ने विनम्र प्रार्थना की।

नेता लोगों में खुसर पुसर होने लगी। गोरा-चिट्टा, सुन्दर-सुडौल

बच्चा नीच जात की एक गरीब कहारिन को देते हुए वे हिचकिचाये । उस अज्ञात शिशु के भविष्य के प्रति उन लोगों में न जाने कहाँ से सहानुभूति उमड़ आयी थी । उनमें से एक बोला, "किसी को क्या पता कि यह बच्चा किस जात का है ? इसे दे देने में ही क्या हर्ज है ? कम से कम इसके पास यह जिन्दा तो रहेगा ।"

"लगता तो अच्छे कुल का है ।" एक अन्य बोले ।

"अजी वह अच्छा कुल ही क्या, जिसमें ऐसे कुकर्म होते हों ।" एक ने तर्क उपस्थित किया ।

"यह कोई बात नहीं । गलतियां तो छोटे बड़े सभी से होती हैं । इससे कुल की पुश्तैनी मर्यादा थोड़े ही नष्ट हो जाती है !" एक आदर्शवादी बोले ।

"अजी कुल–वुल सब बेकार की बातें हैं ।" किसी ने प्रगतिशीलता दिखायी ।

"और गरीब अमीर सब बराबर हैं । जब इसे आवश्यकता है तो बच्चे को किसी अमीर के लेने की प्रतीक्षा में क्यों रोक रखा जाये !" किसी समाजवादी ने कहा ।

इस प्रकार धीरे धीरे बात बच्चे के देने के प्रश्न से हटकर समाज की आलोचना पर आयी और फिर विभिन्न राजनीतिक विचार–धाराओं की सैद्धान्तिक बहस पर केन्द्रित हो गयी और वह कहारिन कभी ममत्वभरी दृष्टि से उस बच्चे की ओर निहारती और कभी प्रश्नभरी दृष्टि से उन लोगों की ओर देख लेती । किन्तु उसकी समझ में कुछ न आता था ।

इसी समय एक दरोगा के साथ तीन सिपाही वहां आ गये । उनके पीछे पीछे कुछ वे लोग भी थे जो बच्चे को पुलिस को सौंपने के पक्ष में थे और वहां से चले गये थे ।

पुलिस को देख कर भीड़ में सहसा कई परिवर्त्तन हुए । बहस बन्द हो गयी और सब चुप हो गये । शंकालु व्यक्ति या तो वहां से

खिसकने लगे या भयभीत से खड़े रहे। वह व्यक्ति जो बच्चे को उठाये था, चुपचाप उसे यथास्थान लिटा कर थोड़ी देर तो वहां खड़ा रहा फिर वहां से गायब हो गया। अशर्फी भी आशा–निराशा के सागर मे डूबने उतराने लगी।

दरोगा ने अपनी कार्रवाही शुरू की। सारी घटना तफसील से सुनी। फिर सबसे पहले देखने वाले, टाल वाले तथा एक आध अन्य व्यक्ति के बयान लिखे। नेता बनने वाले लोग खिसकना चाहते थे किन्तु दरोगा ने उन्हें रोक कर उनके भी बयान लिख लिये। इस सबके बाद दरोगा ने बच्चे को अनाथाश्रम में पहुंचाने की व्यवस्था करने की आज्ञा दी तभी एक व्यक्ति ने साहस करके अशर्फी का प्रस्ताव सामने रखा। अशर्फी भी आगे आ कर उसके पांव छू कर अपनी बात दुहराने लगी।

दरोगा सज्जन था, मान गया। किन्तु बोला, "लेकिन, अब यह इस तरह नहीं हो सकेगा। तुम्हें मेरे साथ थाने चलना पड़ेगा। बिना मैंजिस्ट्रेट के हुक्म के यह नहीं हो सकेगा। फलतः यह कहारिन बच्चे को उठा कर दरोगा के साथ चल दी। भीड़ में से एक दो लोग भी पीछे पीछे हो लिये शेष अपने अपने काम में लग गये।

इस बीच इस समाचार का पता शहर की एक नामी वेश्या को भी लग गया था। वेश्या चम्पाबाई के पास बहुत काफी जायदाद थी, नकद रुपया और जेवरात भी हजारों के थे। समाचार मिलते ही वह कोतवाली जा पहुंची।

वहाँ अशर्फी उस शिशु को गोदी में लिये बैठी थी और दरोगा एक कागज पर कुछ लिख रहे थे। चम्पा ने पहुँच कर एक दृष्टि उस शिशु पर डाली, फिर दरोगा को सलाम करके उसे एक ओर को ले गयी।

"इस बच्चे को मुझे दे दीजिये, दरोगा जी।" चम्पा ने धीरे से कहा। "क्यों, इस ग़रीब के हाथ सौंप कर, बेचारे की जिन्दगी खराब कर रहे हैं। मेहनत मजदूरी करके पेट भरनेवाली के पास

इस नासमझ का भविष्य क्यों नष्ट कर रहे हैं ? कितना सुन्दर, और स्वस्थ बच्चा है, बेचारा । लाइये इसे मुझे सौंपिये । मेरे पास इसे सब सुविधायें रहेंगी । जीवन सुधर जायेगा । और अपनी सारी जायदाद भी मैं इसके नाम कर दूंगी । आपको भी इनाम के तौर पर "

"लेकिन, "दरोगा बीच में ही बोला, "मैं तो इसे इस औरत को सौप चुका हूँ । सारे कागज भी तैयार हो गये हैं । शहर के कितने ही आदमियों के सामने यह बात कही जा चुकी है ।"

"यह तो कोई बड़ी बात नही है । यह सब तो आप ठीक कर सकते हैं । देख लीजिये मैं आपको दो सौ रुपये दे सकती हूँ । और साथ ही आप यह पुण्य का काम भी करेंगे कि इस अबोध बच्चे का भविष्य नष्ट होने से बचा लेंगे, नहीं तो बेचारा कष्टों में बड़ा होगा, बडा होकर ठोकरे खायेगा, बुरी आदतें सीखेगा या आपको कोसेगा । और दूसरी तरफ यह मेरे पास सुख से रहेगा । अपेक्षाकृत अधिक सुविधायें प्राप्त होंगी ।"

थोड़ी देर की बातचीत के बाद दरोगा वापस अपनी मेज़ पर आ गया । मेज़ पर, कमरे में, अशर्फी में और उस बच्चे की स्थिति में इस बीच कोई परिवर्तन नहीं हुआ था । परन्तु दरोगा के चेहरे पर कुछ अजीब सी रौनक आ गयी थी । उसकी जेब में दो सौ रुपये के नोट आ चुके थे और उसके विचारों में एक परिवर्तन ।

अशर्फी बच्चे के ऊपर झुकी हुई बड़े दुलार से उसे देख रही थी । दरोगा के प्रवेश करने पर उसकी ओर देखती हुई बोली, "सरकार, आपका कागज़ लिखा गया हो तो मै इसे ले जाऊं ।"

दरोगा ने क्षण भर उसकी ओर देखा फिर अत्यन्त गम्भीर स्वर मे कहा "नहीं, तुम इसे नहीं ले जा सकती । इसे ले जाने का हुक्म नहीं है ।"

अशर्फी सहसा स्तब्ध रह गयी । बच्चा उसकी गोद से सहसा लुढ़कने को हुआ । किन्तु उसने उसे और अधिक कस कर थाम लिया,

और गिड़गिड़ाती हुई बोली, "ऐसा न कहो, दरोगा जी मेरी आस पूरी हो जायेगी। मैं तुम्हारा अहसान जनम भर न भूलूँगी। मेहरबानी करो, दरोगा जी।"

गर्मी कठोर से कठोर वस्तु को भी पिघला देती है किन्तु धन की गर्मी कुछ ऐसी होती है कि जिससे हृदय का प्रत्येक मुलायम स्थान भी पत्थर सा कठोर हो जाता है। दरोगा ने बिना उसकी ओर देखे ही इतनी तेजी से कहा, "नहीं।" कि अशर्फी के सपनों के महल ढह गये।

दरोगा फिर और अधिक कठोर स्वर में बोला, "इसे इस बेंच पर लिटा कर यहां से तुरन्त चली जा। "यह अब तुझे नहीं मिल सकता।"

दरोगा के कहने के ढंग में कुछ इतनी सख्ती थी कि अशर्फी दहल गयी और एक बार ममत्वभरी दृष्टि उस बच्चे पर डाल कर, उसे सावधानी के साथ लिटा कर चली गयी, जैसे कि अपनी सारी पूंजी लुटा कर जा रही हो।

थोड़ी ही देर बाद चम्पाबाई ने वहां प्रवेश किया। दरोगा ने बिना उसकी ओर देखे ही अत्यन्त गम्भीरता से कहा, "बच्चा ले जा सकतीं हो।"

चम्पाबाई ने मुस्करा कर दरोगा की ओर देखा, जिसे उसने लक्ष्य नहीं किया और आगे बढ़ कर बच्चे को उठा लिया। फिर एक बार और दरोगा को सलाम करके वहाँ से चली गयी।

दरोगा ने सलाम का उत्तर नहीं दिया।

चम्पाबाई को सूचना देने वाले ने यह भी बता दिया था कि वह प्राप्त शिशु लड़का न हो कर लड़की है।

और उस दिन से शहर में एक नयी वेश्या पनप रही थी।

●●

सड़क पर एक शाम

रोज़ की तरह जब मैं लिखते लिखते ऊब गया तो बाहर निकल कर कोठी के दरवाजे पर आया और जाने वालों के कदम गिनने लगा। चलती हुई सड़क मन बहलाव का अच्छा साधन होती है। संसार में जड़-चेतन आदि सभी में विभिन्नता पायी जाती है, तो सड़क इस वैभिन्य को सुविधा-पूर्वक देखने का एक स्थान है।

अभी अभी ऊंची एड़ी के सैंडिलों पर दो पांव दीखे थे जिनकी गेहुंई पिंडलियां एक खास ऊंचाई तक खुली हुई थीं और चमक रही थीं। इन पिंडलियों को मैं अक्सर देखा करता था। यह हमेशा एक खास ऊंचाई तक ही खुली रहती थीं। कभी एक-आध इंच का भी फर्क न होता था। लेकिन एक दिन ये

ज्यादा खुली दिखाया दी थी । उस दिन उनके साथ सट सट से पट में ढके एक युवक के पाँव भी चल रहे थे और वह लड़की जो हमेशा चुप रहती थी, खिलखिलाती हुई हंस रही थी ।

इससे पहले दो मजबूत पांव दीखे थे जो शायद किसी मेहनतकश मजदूर के रहे होंगे । वह किसी सस्ती फिल्मी धुन पर सीटी बजा रहा था । उससे पहले गन्नों से लदा एक ठेला तेजी से निकला था इसका ड्राइवर बड़े भद्दे शब्दों में गन्ना निकालने के लिए पीछे दौड़ते हुए लड़कों को गालियां दे रहा था । यह लड़के गन्ने के हर ठेले के पीछे दौड़ा करते हैं और एक-दो पैसे कीमत का गन्ना खींच पाते हैं । अभी परसों ही इनमें से एक लड़का इसी तरह दौड़ने के कारण ठेले से कुचल भी गया था, लेकिन अपने एक साथी की मौत से भी इनके काम में कोई रुकावट नहीं हुई है । इनके बाप दिन भर रिक्शा चलाते हैं या मजदूरी करते हैं, और शाम को ताड़ीखाने में जा घुसते हैं । आजकल कुछ ने सिनेमा जाना भी शुरू कर दिया है क्योंकि मैंने रात को अक्सर इन्हें जोर से फिल्मी गाने गाते सुना है । सारांश यह है कि यह बच्चे गन्ने निकालने के लिए ठेले के पीछे दौड़ा करते हैं और कुचले जाते हैं और इनके बाप ताड़ीखाने या सिनेमा की तरफ दौड़ा करते हैं और गाने गाते हैं !

इस बीच कुछ साइकिलों पर जोर-जोर से किसी प्रोफेसर को गालियाँ देते हुए कालिज के लड़के गये थे । उनमें से एक को मैं पहचानता था । उसका बाप मेरे पास कालिज की फीस माफ कराने के लिए सिफारिश करवाने आया था । प्रोफेसर को गालियां देने वाला यह विद्यार्थी इसे आजकल का एक फैशन समझता है और अपने बाप को फीस माफ करवाने की अक्लमन्दी पर दाद देता है क्योंकि वह उन बचे हुए रुपयों को और जरूरी कामों में खर्च कर देता है, जैसे शाम को सिनेमा देखना, 'क्वीन्स' या 'बोल्गा' में बैठ कर कुछ दोस्तों के साथ चाय पीना । जब फीस का दिन होता है तो एक-आध पेग ले लेने मे

भी कुछ हर्ज नहीं है । अक्लमन्द बाप के इस अक्लमन्द साहबजादे को घर का खाना अच्छा नहीं लगता । उसका कहना है कि घर के खाने मे विटामिन कम होती हैं क्योंकि घर पर भोजन वैज्ञानिक तरीकों से नहीं पकाया जाता । इस विद्यार्थी ने छोटी कक्षाओं में हाइजीन पढी थी और अब विज्ञान भी ले रक्खा है । यह अलग बात है कि वह विज्ञान में इस छमाही परीक्षा में फेल हो गया है ।

अभी अभी एक रिक्शा गया था जिस पर घूंघट खींचे हुए एक स्त्री बैठी थी जो जरूर नव-विवाहिता रही होगी । उसके पास एक अप-टू-डेट सा दीखने वाला युवक बैठा था जो बातें करने के ढंग से और सटकर बैठने के कारण उसका पति मालूम देता था । वह एक ही बात को बार बार कहने पर भी कोई उत्तर न पाने से खीझा हुआ लगता था और मैंने देखा, उसने ऊब कर उसका घूंघट उलट दिया । लड़की सुन्दर लग रही थी किन्तु फूहड़ थी, वह शरमा गयी थी ।

खांसते हुए और आहिस्ता-आहिस्ता चलते हुए एक सफेदपोश अधेड़ भी आये थे । उन्होंने मेरे पास आने पर भर्राये हुए गले से मुझे नमस्ते की थी, जैसा कि वे हमेशा किया करते थे । वे कहने को तो साइकिल की दूकान किया करते हैं लेकिन वहाँ सुबह शाम पहुँचने पर साइकिल में हवा तक नहीं भरवायी जा सकती थी । कभी पम्प खराब हो जाता था तो कभी कनेक्शन खो जाता था । वहाँ गैर कानूनी तौर पर देशी शराब मिला करती थी । पुलिसवाले सब जानकर भी तहकीकात नहीं करते थे । उधर बढ़ने से पहले ही उनकी आँखों के सामने जेब मे पडे हरे हरे नोटों की हरियाली आ जाती थी । इस तरह इनकी यह साइकिल की दूकान खूब चला करती है ।

एक साहब भी अभी अभी गये हैं, जिन्होंने 'क्रोकोडाइल लेदर' के 'शू' पहन रखे थे । सफेद पैंट और रेशमी बुश्शर्ट, जिस पर सिनेमा की तारिकाओं के चित्र छपे थे, उनके शरीर पर विराजमान थी । इन्हे देखकर मुझे एक साथ दो बातें याद आईं । पहली तो यह कि

'क्रोकोडाइल टियर्स' वाली कहावत भी किसी ने खूब बनायी है। मैं कल्पना करने लगा, सामने एक 'मगर' पड़ा है और वह रो रहा है। आंसू बह रहे हैं। इस कल्पना के साथ-साथ मुझे हंसी आ गयी। दूसरा किसी हिन्दी पत्रिका में छपा एक कार्टून याद आया। उसमें एक व्यक्ति ऐसे कपड़े की बुश्शर्ट पहने था जिस पर पेड़ के चित्र बने थे। दो महिलाएं बातें कर रही थी :

एक—"ये मेरे पति हैं, फारेस्ट डिपार्टमेंट (महकमा जंगलात) मे काम करते हैं।"

दूसरी—"यह तो मैं इनके कपड़ों से ही जान गयी थी "

मैं एक बार फिर हंसा। लेकिन मैंने इन महाशय की बुश्शर्ट देख कर यह अनुभव कतई नहीं लगाया कि फिल्म में काम करते होंगे। अधिक से अधिक यह हो सकता है कि अधिकांश युवकों की तरह यह भी फिल्मी एक्टर बनने के स्वप्न देखते हो।

यह सड़क स्टेशन की ओर भी जाती थी। किसी गाड़ी का समय हो गया था। रिक्शे, तांगों की संख्या एकदम बढ़ गयी थी। अभी-अभी जो रिक्शा गया है, उस पर बैठा एक युवक कह रहा था—"भाई, रिक्शा धीरे-धीरे चलाओ. कहीं लड़ा न देना!"

लेकिन रिक्शा वाले को शायद अपने पर पूरा विश्वास था। वह शायद एक अरसे से यही काम करता रहा होगा। उसने इस 'ऐक्स्ट्रा काँशिस' युवक की बात पर ध्यान नहीं दिया। उसे तो शायद दूसरा फेरा करने की जल्दी होगी। वह युवक फिर बोला—"भाई, तू तो हमे मार देगा। रहने दे, हम उतरे जाते हैं।" और वह रिक्शा धीमा हो गया था। मैं सोचने लगा कि मनुष्य मरने से कितना डरता है!

स्टेशन जाने वाले दल से अलग दूसरी तरफ से एक रिक्शा आ रहा था। जिसमें चार लड़कियां ऊपर-नीचे बैठी थीं। वे किसी बात पर उछल उछल कर तालियां बजा रही थीं। रिक्शावाले युवक को खीचने में तकलीफ़ तो जरूर हो रही होगी, लेकिन वह महसूस नहीं कर

रहा था। लड़कियाँ होने के कारण अपनी स्थिति पर गर्व कर रहा होगा, क्योंकि आने जाने वाले अन्य रिक्शावालों की ओर वह सीना तान कर देखता था। एक दूसरा रिक्शा, जिस पर दो बूढ़े दम्पति बैठे थे, पास से गुजरा। वह रिक्शा वाला भी युवक ही था। उसने पहलेवाले को ईर्ष्या से देखा और पीछे वाले ने तो जल कर व्यंग्य ही कस दिया, "हाँ बे मंगलू, आज तो गहरे में हो।" रिक्शावाला जो मंगलू कहा गया था, उधर देख कर मुस्कराया और सीने को एक इंच और फुलाकर पीछे की ओर घूमकर एक बार और उन लड़कियों की ओर देख लिया जो अब किसी बात पर हंस रही थीं।

अब दिन पूरी तरह छिप गया था। पश्चिम में डूबता हुआ बूढा सूरज इस कदर लाल हो रहा था जैसे उसने खूब शराब पी ली हो। मैं सड़क की ओर से दृष्टि हटा कर थोड़ी देर डूबते हुए सूरज को देखने लगा। सोच रहा था, क्या किसी डूबते हुए आदमी को देखने में भी इतना ही आनन्द आ सकता है? डूबना चाहे सूरज का हो या चाद का या आदमी का, होता तो आखिर डूबना ही है। लेकिन शायद आदमी के डूबने पर महत्त्व नहीं दिया जाता—या तो इसलिए कि आदमी की कीमत नहीं होती या इसलिए कि वह हमेशा के लिए डूब जाता जाता है, चाँद-सूरज की तरह डूब कर दोबारा नहीं निकलता।

मैंने फिर सड़क की ओर देखा। सफेद-सी खद्दर की साड़ी पहने आंखों में धूप का काला चश्मा चढ़ाये एक बुढ़िया आ रही थी। उसे बुढ़िया, अधकचरे बाल देख कर या जिन्हें उनकी उम्र का पता है, उम्र से ही कहा जा सकता था, नहीं तो उसमें बुढ़िया होने के कोई आसार न थे। वह उल्टे-पल्ले की साफ धुली चौड़े काले किनारे की साडी पहने थी। उसकी चाल में युवती और अधेड़ के बीच का-सा आकर्षण था। पीछे से देखने पर आवाजें कसने या पीछा करने लायक युवती का भ्रम आसानी से हो सकता था। उसके एक हाथ में एक बैग था जिसमें आधुनिक युवतियों की तरह लिपस्टिक आदि सौन्दर्य प्रसाधन नहीं होंगे

बल्कि इसके विपरीत कुछ रुपये होंगे, एक रूमाल होगा और कुछ कागज। उसने दूसरे हाथ में छतरी ले रखी थी।

मैं इस बुढ़िया को जानता हूँ। जब यह मेरे पास आयगी तो विनम्रता से हाथ जोड़ कर नमस्ते करूंगा। यह भी बड़ी शालीनता और अभिन्नता से पूछेगी, "अच्छे तो हो ?" मैं उत्तर में सिर हिला दूंगा। फिर वह कहेगी, "और बहू तो ठीक है ? वह यहीं है न ?" तब मैं मुँह खोलूंगा, "हां आप को याद कर रही थी। आप चलिये न, अन्दर ?" और वह कहेगी, "आज तो नहीं, फिर किसी दिन।" और वह आगे बढ़ जाएगी। ऐसा वह हमेशा कहती है, लेकिन मैं जानता हूं कि वह किसी दिन न आयगी।

इसका नाम यहां सावित्री है। इसके पहले यह दिल्ली में थी। वहा यह कुन्ती थी और उससे पहले जालन्धर में यह चम्पा कही जाती थी। तब इस पर जवानी थी और यह बेहद खूबसूरत थी। इस बात की गवाही इसका शरीर दे रहा है जिसका रंग अब भी मक्खन-सा सफेद है। साथ ही, इसके चेहरे पर अब भी चमक है। यह जालन्धर मे ऐसा व्यापार करती थी जिसमें जवान होना जरूरी है, और जो तब तक ही चलता है जब तक जवानी रहती है। इसका व्यापार भी तब खूब चला होगा। इसके कोठे पर उन दिनों हवा रही होगी। और सब व्यापार तो पुराने होने पर जम जाते हैं, उनकी साख बन जाती है, लेकिन यह व्यापार ऐसा है जिसमें नयापन ही आकर्षण है, पुराने होते ही क़दर कम हो जाती है। इसलिए जब चम्पा बाई का कोठा सूना रहने लगा, तब उसे ध्यान आया कि अब वह व्यर्थ हो गयी है। तब भविष्य उसके सामने बड़ा-सा प्रश्नवाचक चिह्न बनकर खड़ा हो गया। जालन्धर छोड़े बिना कोई काम न हो सकता था, फलस्वरूप यह दिल्ली चली आयी और चम्पाबाई से कुन्ती देवी बन गयी। नृत्य और संगीत का अच्छा ज्ञान था और इसी के सहारे दिल्ली में गुजर करनी शुरू की थी लेकिन एक पैंतालीस वर्ष के मनचले व्यक्ति की नजरें इस पर ऐसी

गडी कि मास्टरनी कुन्ती गृहस्थिन कुन्ती देवी बन गयी, विधिवत् व्याह कर लिया। कुछ दिन बाद एकाएक हृदय की गति रुक जाने से वह व्यक्ति इसका साथ न दे सका और कुन्ती देवी 'विधवा' हो गयी। उस व्यक्ति की जायदाद एक तो इतनी बड़ी थी ही नही कि इसका काम चल सकता, फिर उसके वारिसो की गुलामी सहन कर सकना इसके वश की बात न थी। सबसे प्रमुख बात तो यह थी कि इसके शौक पूरे न हो सकते थे। फलतः कुन्ती देवी ने सामान बटोरा और यहां आ बसी। यहा भी नाचने गाने का स्कूल खोला और सावित्री का यह स्कूल खूब चला। भले घरों की छोटी बड़ी लडकियाँ आने लगीं।

मैं उन दिनों संगीत अकादमी की 'एक्जीक्यूटिव' में था। सावित्री के पास ही रहता था। मेरे एक मित्र को लेकर सावित्री मुझसे अकादमी मे नृत्य की शिक्षिका के स्थान पर सिफारिश कराने को आयी। मैंने सिफारिश की हो, या और कोई इससे योग्य उम्मीदवार न रहा हो, या इसका भाग्य तेज़ रहा हो, कैसे भी इसकी नियुक्ति वहां हो गयी। और तब से यह वहीं है। कांग्रेस की सदस्या न होने पर भी खादी पहनती है क्योंकि इसके कारण बहुत बचत है।

इसका यह इतिहास मुझे कैसे मालूम हुआ, इसका भी इतिहास है। कैसे मैंने मुलाकात बढ़ायी, मुलाकात बढ़ाने की शुरुआत कैसे हुई, फिर कैसे यह 'फ्रेंक' हो गयी और एक दिन कैसे इसने मुझे अपनी कहानी सुनायी, यह सब लम्बी बातें हैं। रहस्य गुप्त रखने के लिए बताया गया था क्योंकि इसके जानने से सावित्री का पासा पलट सकता था। और शायद फिर इसे चौथा नाम रखने पर भी इतनी सफलता न मिलती। इसका मैंने अब तक ध्यान रखा है, हां इतना अवश्य हुआ है कि इसका इतिहास जान लेने के बाद मैं इसे परोक्षरूप में 'भगतिन' कहने लगा हूं।

'भगतिन' मेरे निकट आयी और पहले की तरह हुआ। यहीं उत्तर-प्रत्युत्तर दिये गये और वह उसी चाल से आगे बढ़ गयी। मैं थोडी

देर उसे जाते देखता रहा, फिर सड़क पर नज़र डाली । वहां अब भी एक रिक्शा, दो साइकिलें और कुछ पैदल आदमी जा रहे थे । रिक्शा वाला 'आवारा' नाम के कपड़े की कमीज पहने था और कोई आवारा-सा गीत गा रहा था । उसके रिक्शे पर एक कालिज गर्ल बैठी थी जो 'ईचक दाना' नामक कपड़े का ब्लाउज पहने थी और जल्दी में मालूम देती थी क्योंकि मेरे देखते-देखते उसने दो बार घड़ी देखी थी ।

साइकिलवालों में से एक ने उस लड़की को देखकर आह भरी और कुछ अस्पष्ट-सा बुदबुदाया, लड़की ने उसे देखकर अपना आँचल संभाला; किन्तु मैंने देखा कि उसका हाथ नीचे आने पर वह वक्ष को और अधिक खोलता हुआ नीचे खिसक आया । उसकी आंखों में तिरछापन आ गया, फिर थोड़ी देर बाद मुस्करा दी । लड़के की तरफ से कुछ और कहा गया और दोनों साथ-साथ चलने लगे ।

मुझे एक बार फिर सावित्री की याद आयी । जिस ओर वह गयी थी मैंने उधर देखा; फिर दूसरी तरफ जाती रिक्शा पर बैठी उस युवती को देखा, जिसके साथ वह साइकिलवाला सीटी बजाता हुआ जा रहा था । इन दोनों दृश्यों को देखकर मैं सहसा मुस्करा उठा, जैसे मनोवैज्ञानिक अपने विश्लेषण में सफल हुआ हो और धीरे से ओठों से निकला, "यही होता है ।" फिर मैं कोठी के अन्दर चला आया ।

अब मुझे लिखने को मसाला मिल गया था और ताज़गी भी ।

●●

अस्पताल में

मैं बीमारी की दशा में घर पर ही रहना ठीक समझता हूं। मानता हूं कि अस्पताल में रहने से व्यवस्थापूर्ण उपचार किया जाता है, लेकिन न जाने क्यों अस्पताल में मेरी तबीअत घबराती है। लेकिन फिर भी एक बार सन्निपात की कृपा होने पर मुझे सरकारी अस्पताल की शरण लेनी पड़ी। परिवार के अन्य लोगों ने राय दी थी कि अस्पताल में भरती हो जाओ। मुझे सुझाया गया कि अस्पताल में तुम्हारी भावनाओं को प्रगति मिलेगी। मैं भी तनिक भावुक हूं। मान गया, और शहर के एक मात्र अस्पताल में भरती हो गया।

प्रवेश करते ही एक बड़े से बोर्ड पर बड़े बड़े अक्षरों में लिखे कुछ शब्दों पर दृष्टि गयी लिखा था :

'संबंधीगण शव के लिये तीन से चार बजे तक आयें।'

आप ही बताइये कि स्वास्थ्य प्राप्ति की आशा से आये हुये नये नये रोगी पर इससे कैसी बीतेगी ? वैसे मेरी नाड़ियां काफ़ी मजबूत है, और छोटी-मोटी उत्तेजनाओं का असर प्राय: उन पर नहीं होता। लेकिन यह स्थिति तनिक भिन्न थी। आखिर मुझसे न रहा गया, और मैंने एक आदमी से पूछा, जो मेरे हालचाल देखने का प्रयत्न कर रहा था, "भई डाक्टर, आप लोग ऐसी कुरुचिपूर्ण बातें सामने ही क्यों लिख देते हैं ?"

वह डाक्टर था, या जो कुछ भी हो, विस्मय का प्रदर्शन करते हुए बोला, "अजी, बाबू साहब, यह सरकारी अस्पताल है, कोई खाला जी का घर नहीं। देखिये यहा एक रोगी ऐसा है, जो कि मुश्किल से चल पाता है। उसका टेम्परेचर ऐसा रहता है कि हम लोग कभी कभी दवा का पानी उसके मुंह की भाप से गरम कर लेते हैं। मतलब यह है कि उसकी हालत अबतब है। आप अपने ही को लें। अगर आप अच्छे हो जायें, तो आपका भाग्य। लेकिन अगर किसी वजह से, और ऐसी वजह कुछ कम नहीं हैं, आपका टिकट इस दुनिया से कट जाय, तो आपके संबंधियों को आपका शव प्राप्त करने में कितनी आसानी होगी ? कितना नफ़ीस उपयोग है इस साइनबोर्ड का ? मुझे पूरी पूरी उम्मीद है कि आप अच्छी तरह समझ गये होंगे।" और इतना कह कर वह मुझे हत्यारे की नज़रों से देखता हुआ चला गया।

मैंने उसके कुछ दूर पहुँचने तक प्रतीक्षा की। फिर हवा में मुट्ठी तान कर उसी ओर घूंसा दिखाते हुए मैंने चिल्लाकर कहा, "समझ लूंगा, समझ लूंगा।"

वह जाता जाता स्तंभित सा हो कर मेरी ओर मुड़कर देखने लगा। फिर जैसे भनभनाते हुए मच्छर को लोग हाथ से मार कर चल पड़ते हैं उसी तरह कान के पास हाथ फटकार कर वह अपनी राह लगा।

मैं एक सौ चार डिगरी बुखार में ही फिर कुछ न कुछ कहता कि एक नर्स आ गयी, और मुझे स्त्री जाति के सम्मान के विचार से ही चुप रह जाना पड़ा। पर वह आते ही बोली, "वेल, ए मिस्टर, मेरे साथ आओ और अपने शरीर को धो डालो।"

उसके ये शब्द मुझे चुभ से गये मैं तेजी से बोला, "ए मिस साहबा, यदि आप सीधे से कहती कि मैं नहा लूँ, तो क्या अच्छा न होता? क्या मैं घोड़ा हूं, जो आपने मेरे लिए शरीर को धोने का प्रयोग किया?"

"मैं समझी थी कि तुम मरीज हो, लेकिन देखती हूं तुम तो बोलते हो। मुझे तो शक है कि तुम कभी ठीक भी होगे, और इसी से हर बात में अपना टाँग अड़ा रहे हो, और हर बात में कानून बघारते हो।" और वह मुझे स्नानागार में ले गयी।

उसने मुझ से कपड़े उतारने को कहा। जब मैं कपड़े उतारने लगा, तो देखा कि टब में एक सिर चमक रहा है। एक बूढ़ी औरत थी। मैं बोला, "आप मुझे जनाने गुसलखाने में ले आयी हैं। देखिये कोई महिला नहा रही है।"

वह नर्स बोल पड़ी, "ओह, यह तो वह बूढ़ी औरत है, जिसको कुछ सूझता नही है। इसे बड़ा तेज बुखार रहता है। तुम्हें उसके होने न होने से कोई सरोकार नहीं है। कपड़े उतारो। हम इसे निकाल देंगे और तुम्हारे लिए नया पानी भर देंगे।"

मैंने कहा, "इस औरत को नहीं सूझता, तो न सूझे। कम से कम मुझे तो अभी सूझता ही है। मुझे अच्छा नहीं लगता कि कोई महिला…"

तभी डाक्टर भी आ गया। वह बोला, "अपने जीवन में जनाब ही ऐसे मरीज़ मिले हैं, जो इस तरह से पेश आ रहे हैं। मुझे यह नहीं अच्छा लगता वह नहीं अच्छा लगता। आपको इस औरत के नहाने से भी एतराज है, जिसका टेम्परेचर चाहे एक-सौ-पांच ही क्यों न हो, जिसे

चाहे ढंग से कुछ दीखता तक न हो। और अगर कुछ दीखे भी, तो आपका क्या जाता है ? वह ज्यादा से ज्यादा बीस मिनिट और जिएगी।"

तभी वह बूढ़ी औरत बोल उठी, "मुझे बाहर निकालो, मुझे बाहर निकालो, नहीं तो मै तुम सब लोगों को मार डालूंगी।" लगता था वह पागल थी।

उसे निकाल दिया गया और मेरे लिए नया पानी भर दिया गया।

अब इन लोगों को मेरे स्वभाव का यथेष्ठ ज्ञान हो गया था। वह भली भांति जान गये थे कि यह नया रोगी जो अस्पताल में आया है उसका आसानी से मरने का इरादा नहीं है। उन्होंने अब बहस नहीं की और मेरी बातों को ज्यादातर बिना चूं चरा के मानने लगे।

नहाने के बाद जो अस्पताल के कपड़े मुझे पहनने को मिले वह इतने बड़े मालूम दिये कि मुझ जैसे दो उसमें और आ जायें। पहले तो मैंने समझा शायद यह भूल से हो गया हो। पर बाद में पता चला कि यहां कुछ ऐसा नियम है कि मेरे जैसे छोटे आदमियों को हाथी के कपड़े पहने को दिये जाते हैं और बड़े लोगों के लिए बाजीगर की बदरिया की घघरिया ही काफी समझी जाती है। लेकिन मैंने देखा कि मेरे कपड़े फिर भी और रोगियों की अपेक्षा ठीक ही थे। अस्पताल का चिह्न और नम्बर मेरी बाहों पर आता था, जो उचित भी था, जबकि अन्य लोगों के सीने पर, पेट पर या कमर पर, मुझे एक छोटे से वार्ड में रखा गया, जिस में लगभग बीस रोगी थे। उन में कुछ गंभीर रूप से रोगग्रस्त थे, कुछ लोग ठीक भी थे, जो सीटी बजा रहे थे, कुछ लोग शांति भंग करने का संकल्प करके खटाखट कैरम खेल रहे थे। यहां तक कि कुछ लोग तालियां भी बजा रहे थे। मुझे आश्चर्य था कि यदि मुझे देखने वाले डाक्टर का कहना सही था, तो ये लोग मृत्यु के इतने निकट होते हुए भी इस प्रकार क्यों उछल-कूद रहे थे। इस प्रकार इनमे

चेतना भरी रहेगी तो इनके सबधियो को इनका शव ले जाने मे कितनी कठिनाई पड़ेगी। आप सच मानिये, उनके हुल्लड़ से मैं इतना परेशान हो रहा था कि मेरे मन में यह भावना उठनी अत्यन्त स्वाभाविक और युक्तिसंगत थी।

खैर, इस सब्जी मंडी की चख-चख में भी मुझे नींद आ गयी। आयी कैसे, इसका पता नहीं, लेकिन साथ वह ले कर आयी मल्कुल मौत यानी साक्षात् यमदूत को। वह कोई हाड़चाम की शकल नहीं थी, बल्कि खालिस हड्डियों का एक मानव आकार मेरे सामने खड़ा था। मेरी घिग्घी बंध गयी मैंने घबराये हुए से लहजे में पूछा, "तुम क्यों आये हो ?"

उसने उत्तर में कहा, "क्यों आये हो, कितना अजीब सवाल है ? मैं तो यहां रहता ही हूँ। यह मेरा निवास स्थान जो है। ये इतने लोग जो तुम देख रहे हो, जो सीटी बजा रहे हैं, जो कैरम खेल रहे हैं, जो टबों में गरम गरम पानी से नहाते हैं, सब मेरे इस पेट में समा जाने वाले हैं उनके संबंधियों को क्या मिलेगा यह तुम बाहर लगे बोर्ड पर देख भी चुके होंगे। समय तक आसानी के लिये लिख दिया गया है। क्या तुम्हें अब भी मेरे कथन में झूठ दियायी देता है ? मेरे पेट में सबके लिए जगह है। फिर तुम आश्चर्य करोगे कि ये लोग इतना उछल-कूद क्यों रहे हैं। लेकिन कुछ ऐसे भी हैं, जो अपनी स्थिति को खूब अच्छी तरह पहचानते हैं। वे लोग न तो सीटी बजाते, न कैरम खेलते और न खिलखिलाते, वे सूख सूख कर ही मेरा इन्तजार करते है। पहले किस्म के रोगियों की बनिस्बत ये दूसरे किस्म के लोग ज्यादा बदकिस्मत हैं। अच्छा, तो तुम भी अब तैयार हो जाओ।"

मैंने निहायत बहादुरी से जवाब दिया, "भाग जाओ यहां से ! मैं तुम्हारे चकमे में आने वाला नहीं हूं। मैं तुम्हारे साथ हरगिज़ नहीं जा सकता।"

"यह तुम्हारे बस की बात नहीं है। ये सब डाक्टर लोग मेरे

सहायक हैं । तुम मेरे सहायकों से बच कर जा ही कहां सकते हो ? आओ आगे, जिद नहीं करते ।" वह अपनी रीढ़ पर ही बड़े विचित्र तरीके से मचक कर बोला । अब उसने जो मेरी तरफ हाथ बढ़ाया, तो मैं अपने पोपले से मुँह में पूरी हवा भर कर चिल्लाया ।

चिल्लाने पर मेरी आंख खुल गयी, और देखा कि ठीक मेरे सामने बिजली का मीटर लगा हुआ था, जो काले रंग का था, और जिस पर हाथ की दो सफेद हड्डियों को क्रास करके उनके ऊपर मानव की खोपड़ी चित्रित्र की हुई थी । मुझे ऐसा लगा कि मेरी आंख खुल जाने के करण यमदूत भाग कर इस चित्र में छिप गया है । उसके नीचे जो शब्द लिखे हुए थे उनका अर्थ था : 'खबरदार ।'

मेरी चारपाई के आसपास अन्य रोगी इकट्ठे हो गये थे और बाहर से नर्स आदि भी आ चुके थे । मैंने उन लोगों से चिल्लाकर कहा, "मुझे या तो इस कमरे से निकालो या यह मीटर यहां से हटा दो ।"

नर्स ने कहा, "तुम बड़े अजीब आदमी हो । ऐसे आदमी को अस्पताल में नहीं रखा जा सकता । कल को तो तुम कहने लगोगे कि मुझे, यानी नर्स और डाक्टर को भी यहाँ से हटा दो ।"

मैं चुप ही रह गया क्योंकि मैं साफ़ ही देख रहा था कि अन्य रोगी भी अपने अपने ढंग से नर्स का समर्थन करने लगे थे ।

तीसरे दिन तक मुझे निकाला तो नहीं गया, हां नर्स ने मुझ से कहा, "तुम्हारा स्वास्थ्य तो बहुत अच्छा दिखायी दे रहा है । तुम तो ठीक हो रहे हो । जब तक तुम अपने आसपास से कोई बीमारी नहीं ले लेते हम तुम्हारे स्वास्थ्य पर तुम्हें बधाई ही देंगे ।"

अब मेरी समझ में आया कि किस प्रकार वे लोग, जो हसी खुशी से सीटी बजाते और कैरम खेलते दिखायी देते थे, उस मीटर वाले यमदूत के पेट में जायेंगे ? तो यह आस पास से रोग लगने का भी खतरा वहाँ पर मौजूद था ।

जैसे मेरे स्वास्थ्य को नज़र लग गयी हो, जबकि मैं छुटकारे की राह देख रहा था मुझे जुकाम और कफ़ का रोग लग गया। मुझे नर्स ने बताया कि यह रोग मुझे उस बच्चों वाले वार्ड से मिला है। हो सकता है कि मैंने वहाँ की प्लेटों में कुछ खाया हो। डाक्टर ने सुझाव दिया कि मैं चिंता करनी छोड़ दूं, तो जल्दी ठीक हो जाऊंगा।

हो सकता है कि वे मुझे भूल गए हों या किसी को मेरे बारे में कहा गया हो और वह भूल गया हो, पर शायद नये रोगियों की संख्या बढ़ गयी थी, इस कारण एक दिन डाक्टर ने कहा, "हमें आश्चर्य है कि आप एक सप्ताह में ही ठीक हो गये। आज आपको छुट्टी दी जायेगी।"

मैंने कहा, "पर, डाक्टर साहब, अभी तो मुझे जुकाम और कफ़ दोनों हैं।"

डाक्टर ने कहा, "वह ठीक है, हो सकता है। लेकिन हमारे यहाँ आप सिर्फ़ टायफ़ाइड के लिए भरती हुए थे। आज आपको जरूर डिस्चार्ज किया जायेगा। आप फिर कभी अपने इन रोगों के लिए भी यहां दाखिल हो सकते हैं।"

लेकिन जब नर्स मेरे डिस्चार्ज का सार्टिफ़िकेट लिए आयी, तो रोगियों के कमरे के घंटे में ठीक साढ़े तीन बजे थे। नर्स ने आते ही कहा, "ए, यह विस्तरे वाला रोगी कहां है? उसके सम्बन्धी उसे लेने आये हैं।"

मैं खिड़की के पास खड़ा था। मैं आ तो गया, लेकिन मुझे उस समय, यानी ठीक तीन और चार बजे के बीच नर्स का यह कहना बड़ा बुरा लगा कि मेरे सम्बन्धी मुझे लेने आये हैं। खैर, मैं नर्स की तरफ आंखें तरेरता हुआ, जिसे जरूर उसने मेरी बिना वजह की हरकत समझी होगी, उसके साथ साथ अस्पताल से बाहर आ गया।

दरवाज़े पर श्रीमती जी मिली। मुझे देखते ही बोली, "अरे तुम···तुम···" और वह जोर जोर से रो पड़ी।

मैं अजीब असमंजस मे पड़ा कि मैं तो अच्छा हो गया फिर यह रोती क्यों है ? बाद में पता लगा कि श्रीमती जी के पास अस्पताल से एक नोटिस आया था, जिस में लिखा था : 'इस नोटिस के मिलते ही कृपया अपने सम्बन्धी का शव लेने के लिए तीन से चार बजे तक पधारिए ।'

जान पड़ता था कि इस छपे हुए कार्ड में क्लर्क ग़लती से ऊपर वाली पंक्तियों के बजाय वह पंक्ति काट गया था, जिस में लिखा था : 'हमें सूचना देते हुए हर्ष होता है कि आपका रोगी अच्छा हो गया है । कृपया उसे लेने के लिए तीन से चार बजे तक पधारिये ।'

ताप और पारा

ाँ जी, क्या तुम्हारा मन कभी बच्चों के लिए
चता ?" हरखू की स्त्री ने कहा, "क्या तुम्हें
ल नहीं आता कि हमारे भी बच्चे होते तो
ता ?"
न हरखू चुप रहा ।
तो जब किसी के बच्चे को देखती हूं, मन
र रह जाती हूं ।"
अब भी चुप ही रहा ।
हन पता नहीं तुम्हारा कलेजा किस चीज का
ुरुष हो न, कभी इस विषय में कोई बात
करते ।"
ने उसकी ओर देखा और अधिक गम्भीर
।

"वैसे भी, तुम तो स्कूल के बच्चों के साथ दिन भर हंस-खेल कर जी बहला लेते होंगे। मन मारना तो मुझे ही पड़ता है।"

हरखू के धीरज का बाँध टूटने लगा लेकिन वह चुप ही रहा। स्कूल के बच्चों की बात याद आने से उस की दबी व्यथा उभर उठने के लिए व्यग्र हो उठी। जैसे-तैसे भूली-बिसरी वह घटना स्मृति के वातायन से झाकने का उपक्रम करने लगी।

"लेकिन तुम कर भी क्या सकते हो? दोषी तो मैं ही हूं।" उसकी स्त्री कहती रही, "पर तुम दूसरी शादी क्यों नहीं कर लेते?"

पर हरखू उसकी बातें नहीं सुन रहा था। अधमिटी अनुताप की काली रेखाओं ने उसे चारों ओर से बाँध लिया था। सहसा वह फफक कर रो पड़ा। सुबह से उसे रोने के उपयुक्त एकान्त नहीं मिल पाया था। प्रायः दूध का दूसरा उफान पहले से अधिक तेजी लिये होता है, इसलिए दुबारा याद आने पर मन की व्यथा को दबा पाना उसके लिए कठिन हो गया और वह अपनी स्त्री की उपस्थिति की चिन्ता किये बिना ही रो पड़ा। स्त्री यह देख कर कुछ देर चुप खड़ी रही फिर कुछ कहना उचित न जानकर वहां से चली गयी।

हरखू तांगा चलाया करता था। 'सेंट मेरी एकेडेमी' का बधा हुआ तांगेवाला भी था। 'सेंट मेरी एकेडेमी' माण्टेसरी पद्धति की एक शिक्षण संस्था थी जिसमें शहर के सभी संभ्रान्त व्यक्तियों के बच्चे पढते थे। उन बच्चों को लाने पहुँचाने के लिए कई तांगेवाले नियत थे। उनमें हरखू भी था। सुबह नौ बजे से दस तक और शाम को साढ़े-तीन से साढ़े-चार तक का समय उसे देना पड़ता था। बाकी समय में वह निजी मजदूरी करता था। इन नियत घण्टों में सब सवारी छोड़ कर उसे स्कूल के काम पर पहुंचना जरूरी था। इस काम में बन्धन तो था लेकिन एक बंधी हुई निश्चित रकम पहली तारीख को मिल जाया करती थी, इसलिए इसे छोड़ना कोई न चाहता था। फिर हरखू के लिए

तो इसमें एक आकर्षण और भी था।

मनुष्य के अभाव ही उसकी कमजोरी हुआ करते हैं। बच्चे हरखू की सबसे बड़ी कमजोरी थे। वह अपनी स्त्री को किस तरह बताये कि लालसा उसके मन में भी उसी तरह जीवित है। बस, अन्तर इतना है कि उसके मन के आवरण इतने अमोघ हैं कि सहसा उसका उद्रेक नहीं हो पाता। वह कैसे उसे बताये कि उसका कलेजा पत्थर नहीं है, उसमे भी भावना की हिलोरों और उनके स्पन्दनों के लिए स्थान है।

इसी कारण उसे सब बन्धनों के होने पर भी इस ड्यूटी मे आनन्द आता था। जबकि अन्य ताँगेवाले कभी-कभी नागा भी कर देते थे, वह नहीं करता था। यहां तक कि कई बार तो उसे बहुत अच्छी सवारियां छोड़नी पड़तीं। अन्य लोगों को जब वह यह बताता तो वे कहा करते, "तू तो मूर्ख है, हरखू। सवारी क्यों छोड़ी? होता ही क्या? दो-चार बातें मेमसा'ब से सुननी पड़तीं, ज्यादा करतीं तो एक दिन के पैसे काट लेतीं।" लेकिन वे लोग क्या जानें कि हरखू के लिए पैसो से कहीं बड़ी चीज यहां मिलती है।

और यही कारण था कि अन्य लोगों से हैडमिस्ट्रेस नाराज रहती, उन्हें निकालने को कहतीं, उससे वे खुश थीं।

लेकिन कल उसने अपना नियम तोड़ दिया था। स्कूल की छुट्टी होने का समय हो चला था। वह उधर चलने की सोच ही रहा था कि दो अमरीकन उसके तांगे में आ बैठे। उन्होंने उसे मना करने का अवसर ही नहीं दिया और हरखू को उन्हें ले जाना पड़ा। उसने यह सुन रखा था कि ये साहब लोग बहुत ज्यादा पैसे दे देते हैं और सलाम मार दो, तो दो-चार रुपये बख्शीस में अलग से मिल जाते हैं। इतने रुपये तो उसे सारे दिन में भी नहीं बचते थे। इसलिए वह मन ही मन खुश तो हो रहा था पर स्कूल न पहुंच पाने का अफसोस भी करता जाता था। हैडमिस्ट्रेस के डांटने का उसे डर नहीं था, शायद वह उसे डाँटेगी भी नहीं। एक दिन के पैसे कटने का अफसोस भी उसे नहीं हो

और यह भी हो सकता है कि आजकल मेले की वजह से और कोई ताँगा मिले ही नहीं। फलतः सब बच्चों को पैदल ही घर जाना पड़े। बच्चों के पैदल जाने की बात सोच कर हरखू सिहर उठा। वे नन्हे नन्हें से कोमल जीव पैदल किस तरह चल सकेंगे, थोड़ी ही दूर चलने पर थक नहीं जायेंगे! और यह सोच कर उसका मन मचल उठा। अर्थ और भौतिकता के ठोस आधार सहसा फिसलने लगे। उसका मन हुआ कि इन साहब लोगों से कहें कि बस, अब वह और अधिक आगे नहीं जा सकता। इन लोगों को अगले तांगा स्टैंड तक पहुँचाकर वह ऐसा कर सकता है। किसी दूसरे तांगेवाले को इन्हें सौंपकर वह इनसे छुट्टी ले सकता है।

लेकिन इन साहब लोगों से मिलने वाले रुपये अपना मोहपाश ढीला नहीं कर पा रहे थे। दैनिक जीवन की छोटी-बड़ी वे सभी आवश्यकताएं जो वह अर्थाभाव के कारण पूरी न कर सकता था, सहसा उसके सामने एकत्र होकर घूम गयीं। तभी स्टैण्ड आ गया। लेकिन वहां कोई ताँगा नहीं था। वह उसी तरह रहा।

चौराहा आया। दायीं ओर वाली सड़क स्कूल को जाती थी। वह उधर देखने लगा और इस कारण सिपाही के संकेत पर ध्यान न दे सका। लेकिन सिपाही की डांट और अमरीकनों की अंग्रेजी गाली से उसकी तन्द्रा जल्दी ही टूट गयी और उस ओर का ध्यान छोड़ कर चल दिया।

वह तो पुरुष है और पुरुष को इतना कमजोर नहीं होना चाहिये। नहीं, वह अपने मन पर काबू पा सकता है। एक दिन स्कूल न जाने से वह मर तो नहीं जायेगा। यों तो स्कूल की छुट्टियों में, और इतवार के दिन भी वह बच्चों को लाने-पहुँचाने नहीं जाता, फिर आज ही क्या बात है? इस व्यर्थ की भावुकता के कारण तुरन्त हाथ में आने हुए रुपयों को छोड़ना मूर्खता है। नहीं, वह यह अवसर नहीं जाने देगा।

सामने से एक खाली तांगा आ रहा था। एक बार उसने सोचा कि उसे रोक कर अपनी सवारियां उसे दे दे। उसने रास ढीली कर दी और घोड़ा आहिस्ता हो गया। उसने अमरीकनों की ओर देखा। वे अंग्रेजी में गिटपिट गिटपिट बातें कर रहे थे। हरखू उनकी बातें समाप्त होने की राह देखता रहा पर वे बातें करते ही रहे। उन्हें बीच में टोक कर अपनी बात कहने की हिम्मत उसमें नहीं थी। तांगा इस बीच बिल्कुल निकट आ गया था। उसने फिर हिम्मत की लेकिन बोल नहीं निकल सका। बस, होंठ हिल कर रह गये।

तांगा तब तक आगे बढ़ चुका था।

"किस रंज में बैठे हो ?" उसकी स्त्री ने प्रवेश कर के कहा।

हरखू 'कल' से हट कर फिर 'आज' पर आ गया। स्त्री की बात उसने सुनी तो अवश्य पर उस पर उसका ध्यान नहीं गया।

"किस का शोक मना रहे हो ?" स्त्री ने दुबारा कहा, "क्या मेरी बात बुरी लग गयी ? चलो, अब उसे छोड़ो, खाना खा लो।"

हरखू ने सिर उठाकर उधर देखा पर बोला कुछ नहीं। हां, वह शोक ही तो मना रहा है। पर किस का ? यह कैसे उसे बताये ?

जब देर तक हरखू कुछ न बोला तो ऊब कर स्त्री तो चली गयी लेकिन वह उसके प्रश्न के उत्तर में उलझ कर रह गया।

शोक मनाने के अतिरिक्त अब वह कर ही क्या सकता है ? उसका एक नागा इतने बड़े अनर्थ को जन्म दे सकता है, वह अनुमान भी नहीं कर सकता था। लेकिन अब तो सब तरह सोचने पर भी वह अपने को ही उसके मूल में पाता है।

आज सुबह हमेशा की तरह साढ़े-नौ बजे थे और निम्मी और अनिल के बंगले के सामने पहुँच कर वह हमेशा की तरह आवाज लगाने वाला ही था कि उनका नौकर बाहर आया। हरखू कुछ कहे इससे पहले ही वह बोला—"आज तुम जाओ। बेबी स्कूल नहीं जायेगा।"

"क्यों," वह कहने को हुआ, "और अनिल बाबू ?"

"कल स्कूल से लौटते वक्त वह तो मोटर के नीचे आ गये ।"

"कैसे ?" हरखू के मुँह से निकला और अर्धविक्षिप्त सी दृष्टि से नौकर को देखने लगा।

"सड़क पार कर रहे थे कि पीछे से मोटर आ गयी । बेबी तो बच गयीं पर छोटे बाबू चपेट में आ गये ।"

हरखू की आँखों में सागर उतर आया था नौकर इसे देखने को वहां नहीं रुका । पर हरखू के लिए आगे बढना कठिन हो गया था ।

और फिर अब किस तरह हरखू शोक न करे, किस तरह आज खाना खाये और किस तरह अपनी स्त्री से हंस कर बोले ।

●●

अविश्वास की खाइयां

मेरी अपरिचिता,

यह पत्र तुम्हें कुछ असमंजस में अवश्य डालेगा। कुछ देर के लिए तुम्हारे मस्तिष्क में उथल-पुथल मचा देगा। तुम्हारे हृदय के स्मृति-पटल पर, जो समय की पर्तें, प्याज के छिल्कों की तरह चढ़ गयी हैं, उन्हें तुम एक-एक करके, उस एक-एक को खूब अच्छी तरह जाँच कर, नहीं भाड़ कर, जैसे कसीदा काढ़ते समय एकाएक सुई खो जाने पर तुम अपना आंचल भाड़ती हो, मेरी स्मृति को ढूंढ़ने का प्रयत्न करोगी। शायद इसमें तुम जल्दी ही सफल हो जाओ; क्योंकि उस घटना को अभी एक वर्ष ही तो हुआ है। वह जाड़ों की रात थी, जिसमें प्रकाश तम के काले कम्बल से मुँह ढक कर सो गया था, जिसमें चन्द्रमा

भी अमावस के अंधकारमय आंचल की ओट में उसके वक्ष से चिपट कर उसकी गर्माहट ले रहा था, और जिसमें उस अंधेरी और सुनसान सड़क पर दूर-दूर पर जलते हुए लैम्प, कहीं रोशनी लुट न जाये, इस डर से उसे अपने में ही समेटे उस निविड़ अंधकार के आगे अपनी बेबसी पर आंसू बहा रहे थे। आबू नाले के बराबर वाली उस पथरीली, ऊबड़-खाबड़ सड़क की घटना क्या तुम्हें याद नहीं आयी ?

उस दिन शायद तुम्हारे कालिज में कोई उत्सव था। तुम्हें लौटते समय बहुत रात हो गयी थी। साढ़े नौ के लगभग बजे थे। जाड़ों के साढ़े नौ ! और आबू नाले वाली वह सुनसान अंधेरी सड़क !! मुख्य सड़क की रोशनी, और सहपाठी लड़कियों की चहल-पहल सब पीछे छोड़ कर तुम उस सड़क पर अकेली जा रही थी। उस पथरीली, गारे से भरी, जहां-तहाँ गड्ढों वाली, अंधेरी सड़क पर, जिसके बायीं ओर गहरा अंधेरा और गन्दा आबू नाला बह रहा था, तुम अकेली निर्भीक चली जा रही थी। उस सड़क के दूसरी ओर, तुम्हें तो मालूम ही है, कुछ आबादी नहीं है। कुछ दूर तक कालिज का पिछला, घने पेड़ों वाला अंधेरा भाग है, आगे तरकारी बोये हुए खेत है, और·· लेकिन, ये सब तुम्हें बताने से क्या लाभ ? तुम्हारे कदम पड़ने की दृढ़ता और निःशंकता यह स्पष्ट करती थी, कि तुम इस अंधेरे और ऊबड़-खाबड़ रास्ते की अभ्यस्त हो गयी हो।

मैं तुम्हारे पीछे-पीछे चल रहा था। यथाशक्ति अपनी पैरों की आहट को बचाता, छिपाता हुआ। उस अंधेरी रात में, सुनसान सड़क पर एक अकेली लड़की का पीछा करने का कारण जो हो सकता है। वह मेरा नहीं था। वास्तविकता तो यह थी कि मुझे तुम्हारे लड़की होने का कोई आकर्षण नहीं था। मेरा आकर्षण था तुम्हारा कीमती नया चेस्टर। मैं इसकी कीमत का अनुमान पीछे छूटी उस चौड़ी और जगमगाती सड़क पर ही लगा चुका था। यह, इस तरह उपयुक्त निर्जन, नीरव और अंधेरा स्थान मुझ पर और भी नशा कर रहा था। मेरी

चाल कुछ तेज हो गयी थी, और शायद इसीलिए मेरी आहट पाकर तुम रुकी थी। फिर तुमने पीछे मुड़कर भी देखा था। लेकिन मैं कोई कच्चा खिलाड़ी तो नहीं था। तुरन्त ही, पास ही के एक पेड़ की ओट में हो गया था। कहीं कुछ न पाकर तुम फिर चल पड़ी थीं; और मैं भी तनिक तेजी से लेकिन सावधानी के साथ पीछे चल दिया था।

मैं तुम्हारे समीप पहुंच गया था। हम लोग उस सब्जी वाले खेत के पास थे। दूर पर 'जवाहर क्वार्टर्स' दिखायी दे रहे थे। उनके पास ही एक बिजली का खम्भा है, लेकिन तब उसका बल्ब जल नहीं रहा था। क्वार्टर्स की किसी खुली खिड़की में प्रकाश हो रहा था, लेकिन उसका कुछ भी प्रभाव यहां नहीं था। मैं तुम्हारे बिल्कुल समीप था। तुम्हारी चाल में कुछ थकान थी। मगर मुझे भ्रम हुआ, जैसे तुम सर्दी से कांप रही हो। उस समय तो मैं इसे भ्रम ही समझा था, और इसलिए उस पर कुछ सोचने की मुझे आवश्यकता नहीं थी। मैं अब इतना समीप था कि हाथ बढ़ाकर तुम्हें छू सकता था; लेकिन मैं हिचक रहा था। यह मेरा पहला अवसर था। मैं सच कहता हूँ, यदि तुम मेरा विश्वास कर सको, तो मैंने इससे पहले कभी किसी अकेले मुसाफिर को इस तरह लूटने की चेष्टा नहीं की थी। यह काम चोरी के काम से अलग है और उससे कहीं अधिक साहस और जोखिम का है। चोरी तो मैंने बचपन से ही शुरू कर दी थी। तब लोग इसे बचपन की चालबाजी और शैतानी समझ कर टाल देते थे। लेकिन अब यही बढ़कर यह रूप ले चुकी थी।

मैंने अपना हाथ आगे बढ़ाया, लेकिन वह तुम तक पहुँचने से पहले ही वापस आ गया था। मैं फिर हिचका था। लेकिन उसी क्षण मुझे अपनी शर्त का ध्यान आ गया। उस दिन मेरे एक मित्र से बहस हुई थी कि मैं सिर्फ झूठी शान ही दिखाता हूं। मैं 'रॉयल' में एक शाम भी किसी रंगीन परी और शराब के साथ नहीं गुजार सकता। शान तो सचमुच ही मैं झूठी दिखाता था; लेकिन सम्मानित समझने की आशा

नहीं दे सकता था। मैंने फिर साहस बटोरा और इस बार मेरे कठोर हाथों में तुम्हारी कोमल गर्दन आ गयी। मुझे डर था कि तुम चीख पड़ोगी, इसलिए दूसरा हाथ तुम्हारे मुँह पर पहुंच गया था।

मैंने कड़क कर कहा था, "चेस्टर उतार दो।"

तुम्हारे मुँह से चीख न निकली थी, शायद बहुत अधिक डर जाने के कारण। सिर से पैर तक बुरी तरह तुम काँप गयी थी। मैंने तुम्हारी गर्दन छोड़ दी थी, और फिर कहा था, "जल्दी उतारो। अगर तुम्हारा विचार है कि सहायता के लिए आवाज लगा कर किसी को बुला लू, तो यह निर्मूल है। तुम्हारी आवाज किसी के पास नहीं पहुँचेगी।"

तुम, शायद तब तक, चेतनावस्था में आ चुकी थी। डरी हुई आवाज मे बोली, "मैं चेस्टर तो उतार दूंगी, बस मुझे घर तक पहुंच जाने दो। यह मेरी विनती है। मुझे अभी निमोनिया हो कर चुका है, और अब भी, चेस्टर होते हुए भी, मैं जाड़े से कांप रही हूँ। मेरा विश्वास करो; मैं घर पहुँचते ही दे दूंगी।"

मैंने सहसा ही कोई उत्तर नहीं दिया था। मैंने इस पर कुछ विचार किया। लड़की होने के कारण विश्वासघात करने पर भी मुझे तुमसे कोई आशंका नहीं मालूम दी, और मैंने कह दिया था, "अच्छा, चलो।"

इतना सब बताने का मेरा उद्देश्य तो केवल यह ही है, कि तुम जान जाओ कि यह पत्र किसका है। यह तुमने कभी का अनुमान लगा लिया होगा। लेकिन फिर भी मुझे सारी बातें दोहरा लेने दो। यह घटना मेरे जीवन की शायद सबसे महत्त्वपूर्ण घटना है। इसने मेरी कायापलट ही कर दी है। मैं इसे कभी नहीं भूल सकता। मुझे इसे दोहराने में शान्ति मिलती है। इसलिए मैं चाहूंगा कि तुम मुझे कहने दो।

अब मैं तुम्हारे साथ-साथ चलने लगा था। हम लोग बिल्कुल अन्धेरे से गुजर रहे थे। सहसा, एक गहरा-सा गड्ढा आया था। लेकिन

तुम रास्ते की अभ्यस्त होने के कारण बच गयी थीं; पर मेरा संतुलन बिगड़ गया था। और, यदि तुमने सहारा देकर पहले ही रोक न लिया होता, तो मैं धरती सूँघता ही नजर आता। मेरी बांह पकड़ कर तुमने सभाल लिया था। मैंने उस अन्धेरे में ही तुम्हें देखने की कोशिश की थी। तुमने भी मेरी ओर देखा था। लेकिन, उस दृष्टि में भय था, आतंक था।

अब सहसा चढ़ाई थी; और उसके बाद सड़क कुछ समतल थी। 'जवाहर क्वार्टर्स' आ गये थे। लेकिन रात के अन्धेरे में सोये हुये से लग रहे थे। सारा वातावरण निःशब्द था। बस, उस गन्दे नाले में बहते हुए पानी की आवाज सुनायी दे रही थी; और दूर पर भौंकते हुए कुत्तों की आवाज़। आगे बेगम पुल था। उसके पास, दूर पर चौराहे की रोशनी दिखायी दे रही थी। वहाँ की चहल-पहल का अन्दाज नहीं से लगाया जा सकता था।

"तुम कहाँ रहती हो ?" मैंने धीरे से पूछा था :

"इस सड़क का जो 'क्रॉस' आयगा उसे पार करके, इसी नाले के साथ आगे एक बाग है। उसके बाद एक मैदान है। उसे पार करने पर मेरा मकान आता है।" अब तुम्हारा स्वर संयत था।

फिर शान्ति हो गयी थी। तभी हवा का एक सर्द और तेज झोका आया था, और एक सिहरन-सी फैला गया था। मैंने तुम्हारी ओर देखा था। तुम बुरी तरह कांप गयीं थी। तुम्हारे दांत बज उठे थे। "उफ ! कितनी ठंड है ?" अस्पष्ट स्वर में तुमने कहा था।

मैंने सुन कर भी नहीं सुना था; और सोच रहा था, कभी 'रॉयल' के 'सपर' और उस पर साथ बैठने वाली लड़की 'पेन्जी हैब्रबर्न' के बारे में। पेन्जी हैब्रबर्न ऐसी लड़कियों में सबसे अच्छी और महंगी लडकी है। या, कभी तुम्हारे चेस्टर और तुम्हारे निमोनिया से उठे शरीर के बारे में सोचता जा रहा था।

क्वार्टर्स समाप्त हो चुके थे। हम चौड़ी सड़क पर आ रहे थे।

बायीं ओर, जगत सिनेमा की रोशनी दिखाई दे रही थी । चौराहे पर लाल–नीले 'नियोन साइन' में लिखा "देवदास" भी स्पष्ट दीख रहा था । तभी दाहिनी ओर से, शोर मचाता हुआ लड़कियों का झुंड आता दिखायी दिया था । सड़क पर पहुँचते–पहुंचते वह झुंड हमारी ओर बढ़ गया था । उनमें से एक लड़की बोली थी, "अरे नीरू तुम ! इतनी रात को कहां से आ रही हो ?"

"आज कालिज में 'म्यूज़िक कंसर्ट' था । उसी में देर हो गयी । मगर तुम लोग इस वक्त कहां चल दीं ?"

"देवदास' देखने जा रही हैं । तुम भी चलो, न !"

"नहीं, तुम लोग ही हो आओ ! मैं तो आज न जा सकूंगी ।"

वे पांच लड़कियां थीं । उनके साथ एक लड़का भी था, जो शायद उनमें से किसी का अविभावक रहा होगा और अलग–सा खड़ा हुआ था । उनमें से एक लडकी ने, उस लड़की का, जो तुमसे बात कर रही थी, हाथ पकड़ कर चलने को कहा था । लेकिन वह नहीं बढ़ी थी । उसने तुमसे धीरे से पूछा था, "ये तुम्हारे साथ हैं ?" उसका इशारा मेरी ओर था–यह मैंने भांप लिया था ।

"जल्दी चलो न, हमें देर हो रही है ?" उसने फिर पूछा था ।

"मेरे एक मित्र हैं ।" तुमने अटकते हुए उत्तर दिया था । यह सुनकर मुझे ऐसा लगा था, जैसे धरती ऊपर उठ गयी हो, जैसे गन्दे नाले की बदबू इत्र की सुगन्ध में बदल गयी हो, जैसे अमावस के अन्धेरे में पूनम का चाँद खिल गया हो । उसी लड़की ने फिर दोहराया "मित्र ! लेकिन इन नये मित्र का परिचय भी हमसे नहीं कराया ?" इसका उत्तर सुनने के लिए वह वहां नहीं रुकी थी । उसे उसके साथी घसीट कर आगे ले गये थे । हम लोग फिर चल दिये थे । अब सहसा ढाल था । उसके बाद फिर वैसा ही ऊबड़–खाबड़ अन्धेरा रास्ता था । उन लोगों का शोर–गुल कुछ देर तक सुनाई देता रहा । फिर धीरे-धीरे दूर होते-होते वातावरण की शान्ति में खो गया, जैसे अथाह समुद्र में

पत्थर विलीन हो जाता है। हम लोग अब चुपचाप एक बाग की चारदीवारी के साथ-साथ चल रहे थे। इसकी समाप्ति पर ही वह मैदान था, जिसे पार करके तुम्हारा घर है।

"तम्हारे घर पर कौन-कौन हैं ?'

"मेरी मां, और एक छोटा भाई।"

"और पिता जी ?"

'वह ! वह नहीं है।"

"फिर घर का खर्च कैसे चलता है ?"

"मैं और मां खाली समय में एक स्कूल में पढ़ाते हैं।"

"हूं।" और मैं चुप हो गया था। मेरी आँखों के आगे फिर घूम गया था : तुम्हारा चेस्टर। और उसके बाद 'रॉयल' का सजा हुआ 'डाइनिंग हाल' कीमती 'क्रोकरी' में रक्खा हुआ कीमती सपर, पैन्जी हैब्रवर्न, अपने मित्र की शर्त, अपनी शान का दम्भ। एक साथ सब मेरी आंखों के सामने और मस्तिष्क में नाचने लगे थे। दूसरे ही क्षण दृश्य बदल गया था। जाड़े की हवा में सिकुड़ती सिमटती तुम्हारी देह, निमोनिया और...और मैंने आंखें बन्द कर ली थी। फिर बन्द आंखों से 'रॉयल' का 'डाइनिंग हाल' और पैन्जी हैब्रवर्न की अदाएं मुझे दीख पड़ने लगी थी। मेरी नाक को कीमती 'सपर' की सुगन्ध आने लगी थी। और जीभ लाल अंगूरी शराब के चटखारे लेने लगी थी। मैंने घबरा कर आंख खोल ली थी। सामने तुम थी।...और चेस्टर तुम्हारे शरीर पर था। तुम निष्काम-सी, निश्चिन्त-सी खड़ी थीं। लेकिन पलक मारते ही मुझे लगा था, जैसे तुम्हारा चेस्टर तुम पर नहीं है, और तुम जाड़े से कांप रही हो दांत बज रहे हैं और कह रही हो 'उफ' ! कितनी ठण्ड है !' और

तभी तुम्हारा मकान आ गया था। छोटा-सा एक-मंजिला मकान था। दरवाजे पर पहुँच कर तुमने अपने हाथ की किताबें मुझे पकड़ाते हुए कहा था। "मेरी किताबें पकड़ लो, तब तक मैं चेस्टर उतार दूं।"

तुम्हारे स्वर में छोटे बच्चों जैसा विश्वास था ।

मैं तुम्हारे और अधिक निकट खिसक आया था । मेरी दृष्टि तुम्हारे चेहरे पर जम गयी थी। मैंने झुक कर तुम्हारी आँखों में झाका था । उनमें कुछ अजीब-सी शून्यता थी । मुझे सहसा न जाने "कैसा लगा था। उस शून्य में समा जाने की इच्छा हुई थी । लेकिन मेरे हाथ आगे बढ़ गये थे । तुमने बिना किसी झिझक के अपने हाथों की किताबे मुझे पकड़ा दीं थी । इस व्यापार में मेरी उंगलियाँ तुमसे छू गयीं थी । उनकी ठंडी कोमलता ने एक बार मेरे हृदय को जैसे दहला दिया था । तुम चेस्टर उतारने लगी थी । मैं चित्र-लिखित-सा सूनी आँखों से तुम्हारी ओर देखता रहा था । चेस्टर और उसके ढके हुए शरीर को, जो अब तक उसकी गरमाहट के होते हुए भी कांप रहा था, देखता रहा था । फिर 'रॉयल' का 'सपर' और 'पैन्जी' का रूप मुझ पर नशा करने लगा था, और एक बार फिर मेरे विचारों में दृढ़ता आ गयी थी । लेकिन तभी सहसा हवा का एक सर्द झोंका आया था और सारे वातावरण मे ही एक सिरहन-सी फैल गयी थी । मेरी दृष्टि तुम पर ही थमी हुई थी । मैंने देखा था, तुम काँप रही हो, दांत बज रहे हैं, सर्दी के कारण ।

चेस्टर उतार कर उसे एक बार तुमने देखा था । फिर सहसा ही मुझे थमा दिया था । मै एक बार ठिठका था, फिर चेस्टर थाम लिया था । वह अभी तक तुम्हारे शरीर की गर्मी से गर्म था, जो न जाने क्यों मुझे अच्छी लग रही थी । लेकिन, साथ ही उस गर्मी से मेरे मस्तिष्क में उबाल-सा आ गया था । फिर तुम अंतिम बार मुझ पर नजर डाल कर जाने के लिए थम गयी थीं । मुझे उसमें संतोष स्पष्ट दीख रहा था । जाते जाते तुमने दोनों हाथ जोड़ कर कहा था, "अच्छा नमस्ते !"

मैं इस अप्रत्याशित अभिवादन से चौंक गया था । मैं जैसे फिर जाग गया था । सहसा ही, मैं तुम्हारी ओर देखकर सोचने लग गया

था कि देवी और साधारण स्त्री मे क्या अन्तर हो सकता है ? 'रॉयल' 'सपर' की सुगन्ध जैसे वापस लौट गयी थी। 'पैंजी हैबबर्न' की अदाओं की शोखी जैसे मुझ से दूर हो गयी थी। लेकिन फिर भी मैं वापस जाने के लिए घूम गया था। उधर तुम दरवाजा बन्द करने लगी थी, लेकिन बन्द करने का शब्द सुनते ही मुझ को चेतना आ गयी थी, जैसे मेरा इन्सान जाग गया था, जैसे दरवाजा बन्द करने की आवाज ने हथौड़ी की चोट की तरह उसे झनझना दिया था। मैं तुम्हें रोकने के लिये मुड़ कर पुकार उठा था, "जरा ठहरना।" और फिर तुमने दरवाजा खोल दिया था। मै आगे बढ़कर तुम्हारे बिल्कुल निकट आ गया था। फिर बड़ी तेजी से चैस्टर तुम्हारे कंधे पर फेंक कर असयंत से स्वर में बोला था "नहीं नहीं मुझे चैस्टर नहीं चाहिये, नहीं चाहिये।" यह वाक्य पूरा करते करते ही मैं मुड़कर बड़ी तेजी से वापस चला आया था।

उस दिन के बाद तुमने कभी मुझे याद किया हो, मैं नहीं कह सकता। हो सकता है, तुम इसे अपने जीवन की एक अनोखी घटना समझ कर, भूलना चाह कर भी न भूल सकी हो, या एकाध बार इसके कारण डरावने स्वप्न देख कर रात की नींद में चौकन्ने होकर उठ गयी हो। जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं तो तुम्हें जीवन भर नहीं भूल सकता। तुमने मेरा जीवन-क्रम ही बदल दिया है। तुमने मुझे बचा लिया, फिर तुम्हें भूल पाना कहां सम्भव है ? हर समय तुम्हारे ही बारे मे सोचते रहने का मर्ज हो गया है। और यही कारण है कि मैं तुम्हे अपना समझने लगा हूं—अधिकार समझने लगा हूं तुम पर। इसीलिए इस पत्र का संबोधन 'मेरी अपरिचिता' लिख सका हूं। 'अपरिचिता'—इस कारण, कि तुम मेरे जीवन में अपरिचिता के रूप में ही आयी थी; और तुम्हारा वही रूप मेरा सब कुछ है-अविस्मरणीय है। तुमने भी मेरे बारे मे कुछ न कुछ अवश्य ही सोचा होगा। अनुमान लगाया होगा। हो सकता है, मुझ पर क्रोध आया हो, और मेरे इस हीन कार्य के कारण

मुझे अपनी स्मृति से झंझोड़ कर बरबस निकालने का भरसक प्रयत्न किया हो। लेकिन, यह तो मैं निश्चय रूप से कह सकता हूं, इसमें तुम सफल नहीं हुई होगी और न हो सकोगी। हो सकता है, तुम्हें मुझ से सहानुभूति हुई हो। मेरी दशा, मेरी परिस्थिति की कल्पना करके मुझ पर तुम्हें खेद हुआ हो। तुम्हारे उस दिन के संदिग्ध और आश्चर्यजनक व्यवहार से इसकी सत्यता में सदेह भी कम ही है।

मैं एक साधारण क्लर्क हूँ। एम. ए. करने के बाद भी ८५ रु० माहवार का बाबू! इस 'बाबू' या 'बाबूजी' बब्द में संपन्नता और निर्धनता का जो विरोधाभास है, उसे शायद तुम नहीं जानती होगी। ऊपर से इज्जत और पोजीशन का खोल जबरन पहने हुए यह बाबू जापानी बबुए की तरह खोखले होते हैं। इसका यह खोल उसी बबुए की तरह तनिक से दबाव से पिचक जाता है। और इनका आर्थिक ढांचा घुन-लगे बांस की तरह कमजोर होता है। तीन वर्ष हुए, मेरा विवाह भी हो गया था। और पिछले वर्ष ही मुझे पिता होने का गौरव भी प्राप्त हुआ है। मैं इसे 'गौरव' कह कर सचमुच गौरव अनुभव नहीं कर रहा हूँ। मुझ जैसे साधनहीन व्यक्ति के लिए, यह कभी गौरव नहीं कहा जा सकता। इतने उत्तरदायित्व निभाने के लिए कोई पर्याप्त आय का साधन मेरे पास नहीं है। बस ८५ रुपल्ली की छोटी-सी तनख्वाह से ही सब काम चल सकता है। अधिक उपयुक्त तो यह होगा कि 'काम चलाया जाता है।' मेरी कुशल पत्नी किसी न किसी तरह पूरा कर ही लेती है।

मेरे भी मित्र हैं। मित्र अधिकतर इस आर्थिक स्तर के नहीं हैं, बल्कि स्वच्छंद और सम्पन्न हैं। अपने साथियों में स्वच्छन्द और सम्पन्न समझा जाना मुझे भी अच्छा लगता है। और बाह्य रूप में मैं ऐसा ही जनाता हूं। लेकिन, जब अपने आर्थिक ढाँचे को जर्जर रूप में पाता हूँ, तो मैं जैसे खाई में फिसल जाता हूँ। शाम की रंगीनी मुझ पर भी असर करती है। मेरे भी पैर अनायास ही बेगम पुल की ओर बढ़ जाते

हैं। 'क्वीन्स बार' की चहल-पहल, उसका मादक और शोख नशा मुझे भी आकर्षित करता है। 'बोल्गा' और 'रॉथल' से गुजरते हुए, मेरी आँखें भी खुली ही रहती हैं। 'बॉल रूम' से आती नशीली आवाज, या 'ओपेरा' का मीठा 'आरकेस्ट्रा' या 'पैन्जी हैब्रबर्न' जैसे शराबी यौवन की संगीतमयी बोली मेरे कानों से भी टकराती है। कीमती इत्र और खुशबूदार पाउडर की सुगन्ध मेरी नाक को भी अच्छी लगती है। भड़कदार सुन्दर और साफ कपड़ों से मुझे भी कोई परहेज नहीं है। लेकिन इन सब के लिये चाहिये रुपया। जिसे शायद मेरे पास आते खौफ़ लगता है। केवल बाह्य इन्द्रियाँ ही ये सब अनुभव करती होतीं, तो शायद चोरी करने की आवश्यकता नहीं होती। लेकिन ये अनुभव सीधे मेरे हृदय से टकराते हैं। इस टकराहट से अजीब सी टीस होती है। और, यह टीस मेरे चोर बनने के लिये उत्तरदायी है।

लेकिन अब उस दिन के बाद मैंने चोरी नहीं की है। मुझे अब अपने पर स्वयं आश्चर्य है कि मैं यह काम कैसे छोड़ सका हूँ। ऐसे कितने ही अवसर आये हैं जब मेरी आन्तरिक भावनाएं उभरी हैं लेकिन तुम्हारी स्मृति की शक्ति उनसे सबल थी और हर बार मैं बचता हूँ।

एक बार बम्बई बाजार की एक कपड़े की दुकान पर एक युवती खरीदारी कर रही थी। दुकान पर भीड़ बहुत थी और वह जिस [illegible] पर बैठी थी, वह दरवाजे के बिल्कुल निकट थी। उस युवती का [illegible] कुर्सी से खिसक कर नीचे लटक गया था। युवती उस ओर पीठ [illegible] हुए थी और झुक कर एक कीमती साड़ी देख रही थी। उस साड़ी [illegible] कीमत सौ रुपये के आस-पास ही रही होगी, इससे स्पष्ट था कि [illegible] पर्स में इसके लगभग रुपये तो अवश्य ही रहे होंगे। उसको उठा कर [illegible]ड़ में मिल जाना कितना आसान था। लेकिन मैंने उस युवती से कहा, [illegible]देखिये, आपका पर्स कैसे पड़ा हुआ है? इसे संभालिये, कोई उठा ले।"

एक बार तो इससे भी दिलचस्प और कीमती अवसर था।
तो, सचमुच, अपनी मनोभावनाओं को दबा पाना बड़ा मुश्किल हो
था। एक दिन, किसी सम्बन्ध में, मुझे एक परिचित ने अपने घर
बुलाया था। उसका निजी कमरा घर से बिलकुल अलग है। और
भी शहर से अलग-सा है। जब मैं वहाँ पहुंचा, तो कमरे का दरव
आधा खुला था। मैंने उसे खटखटाया। कोई उत्तर नहीं मिला। f
दूसरी बार तनिक जोर से खटखटाने पर भी उत्तर नदारद पाकर
अन्दर घुस गया। कमरा खाली था। वह शायद अन्दर गया होगा।
उसकी प्रतीक्षा में बैठ गया।

बैठते ही मेज पर रक्खी उसकी बहुत ही कीमती सुनहरी 'f
वाच' पर नजर पड़ी। उसकी चैन भी सोने की थी। उसे देखते
इस एकान्त वातावरण का सहारा पाकर मेरी भावनाएं उभर आयी
बस, एक सेकिंड बाद वह कीमती घड़ी मेरी हो सकती थी। मैं स
रहा था : मैं तुरन्त ही इसे लेकर चला जा सकता हूँ। अभी तो वि
को मेरे आने का पता भी नहीं है। यदि वह व्यक्ति रास्ते मे f
जायें, तो वह मेरे लिये यह विचार ला भी नहीं सकता। यदि वह
घड़ी लिये हुए देख ले, तो भी बचाव का रास्ता था। मैं हंसते
कह सकता था, उसकी शुभाकांक्षा करता हुआ, समझाता हुआ
साहब, इतना लापरवाह होना ठीक नहीं। कमरा खुला पड़ा है, और
नदारद हैं, देखिए आपकी घड़ी अभी चोरी हो जाती।" यदि जाने
पहले आ जाये, तो उसकी आंख बचाकर अपने बैग के नीचे छिप
घड़ी मेज पर सरकायी जा सकती थी। इस तरह यह स्पष्ट लग
था, कि घडी चुरा लेना कितना आसान काम था। लेकिन, मेरा प्रण
न करने देता था। वहां बैठे-बैठे ज्यों-ज्यों समय बीत रहा था,
हृदय में चोरी की भावनाएं आग की तरह भड़कती जा रही थीं।
बार उनमें जैसे उबाल-सा आया और मैंने घड़ी को उठा लिया।
ठंडी और भारी लग रही थी। न जाने, क्या सोचकर मैंने उसे f

मेज पर रख दिया। तीन चार सौ रुपये का लालच मुझ पर असर कर रहा था—अधिकार सा कर रहा था।

तुम नहीं समझ सकतीं कि, उस समय मेरी क्या स्थिति थी। यह कितना कठिन समय था! कितना असह्य! कुछ ऐसी ही बेचैनी थी, जैसी कि किसी सिगरेट पीने वाले को होती है, जब उसे सिगरेट पिये हुए बहुत देर हो गयी हो, और वह सिगरेट कहीं न पा सका हो। लेकिन तुम सिगरेट पीने वाले की पीड़ा भी कहां समझ पाओगी? उस समय ऐसा लगता है, जैसे कोई शरीर को एक ओर खींच रहा हो; हृदय मे एक अजीब सी प्यास भर जाती है; और तब सिगरेट के एक कश के बदले आदमी अपना जीवन भी देने में नहीं चूकता।

आखिर मैंने इस परिस्थिति से बच निकलने का रास्ता निकाल ही लिया। मैं कमरे से बाहर आ गया और टहलने लगा। थोड़ी देर बाद जब वह परिचित व्यक्ति वहां आ गया, तभी अन्दर आया।

अभी हाल ही में एक अवसर घड़ी वाले अवसर से भी दिलचस्प और सुविधापूर्ण मिला था। लेकिन इस बार मैं तनिक भी विचलित नहीं हुआ। बस, एक बार विचार कौंध-सा गया। फिर काले बादलों मे बिजली की तरह छिप गया। तभी मुझे तुम से मिलने की इच्छा हुई। तब से, इस पत्र लिखने तक, मैंने तुमसे मिलने की कितनी ही कोशिश की; लेकिन मिलने का साहस नहीं हुआ। कई बार तुम्हें मैंने बाजार मे और कालिज के रास्ते में भी देखा। पीछा भी किया। लेकिन सामने आकर बोलने का साहस न जुटा पाया। तुम्हारे घर के कितने ही चक्कर लगाये हैं। अब मैं तुम्हारी माँ को भी पहचान चुका हूं। मैंने उनके जाने और तुम्हारे अकेले रहने का समय भी ज्ञात कर लिया है। उस दिन मैं तुम्हारे दरवाजे तक आया भी हूँ; लेकिन पांच मिनट तक खड़े रहने पर भी हाथ दरवाजा थपथपाने का साहस न कर सके। इसलिए, हार कर यह पत्र लिख रहा हुं। इसे 'लेटर बॉक्स' में डाल भी दूंगा, अभी संशय ही है।

अविश्वास की खाइयां

मेरे इस पत्र का, इस कहानी को दोहराने का, उद्देश्य क्या है ? यह तुम सोच रही होगी, और इसे मेरी बेवकूफी, और भावुकतामात्र, समझ कर मन ही मन हंस भी रही होगी।

मैं बस यह जानना चाहता हूँ, कि मेरे बारे में तुम्हारी बुरी धारणा तो नहीं है। उस दिन से अब तक, मुझे यही बात कचोटती रही है, कि तुमने मेरे बारे में क्या सोचा होगा ? यही बात है जिसके कारण मैं यह बुरी आदत छोड़ सका हूं। मैं अब चाहता हूँ कि मेरे और तुम्हारे बीच उस दिन जो अविश्वास की खाइयां खुद गयी थीं, अब समतल हो जायें। तुम मुझ पर एक सज्जन की तरह विश्वास कर सको। यदि स्मृति-पटल पर मेरी स्मृति रखना चाहो तो उसे उजली आकृति में रखो। मुझे उम्मीद है, मैं तुम्हारा विश्वास पा सकूंगा, और उस दिन बनी अविश्वास की खाई समतल हो जायगी। मुझे उत्तर देना इसका······

और हां, यदि तुम्हें कभी मेरी आवश्यकता हो, तो मुझे अवश्य लिखना। मैं तुम्हारी सहायता करके अपने को धन्य मानूंगा।

मैं तो साहस जुटाने में असमर्थ रहा, यदि तुम कर सको तो मिलना। बस।

तुम्हारा ही

··· ··· ··· ···